क्रांतिकारियों
के 101
प्रेरक प्रसंग
सुखवीर सिंह दलाल

9.3

नित्याँ

नित्या
आर्या

नित्या
आर्या

क्रांतिकारियों के 101 प्रेरक प्रसंग

लेखक
सुखवीर सिंह दलाल
एम. ए. (हिन्दी), बी. एड,
पत्रकार, पूर्व सम्पादक 'मानव-वन्दना' (मासिक)
State Award Winner, Delhi

अंकुर प्रकाशन
ए-31, न्यू गुप्ता कॉलोनी, दिल्ली-110009

ISBN : 81-903100-5-4

प्रकाशक : अंकुर प्रकाशन
ए-31, न्यू गुप्ता कॉलोनी, दिल्ली-110009

दूरभाष : 27247827

टाइप सैटर : देवी ऑफसेट प्रोसेस
1449/16, दुर्गापुरी, शाहदरा, दिल्ली-93

मुद्रक : एस. एन. प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

प्रथम संस्करण : 2011

मूल्य : 125.00

विषय-सूची

1. राजद्रोह नहीं विद्रोह

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के **वीर मंगल पांडे** को फांसी की सजा सुनाने से पहले उनसे कहा गया कि वे मांफी मांग लें। मंगल पांडे ने पूछा–"किस बात के लिए मांफी मांगू।" जेलर ने कहा–"तुमने राजद्रोह किया है। मंगल पांडे ने अविचल स्वर में कहा, 'मैं फिरंगियों को इस देश का राजा नहीं मानता। इसलिए राजद्रोह का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। मैं उन्हें देश का शत्रु मानता हूँ। उन्होंने मेरे देश पर अधिकार किया है और मैं उनको यहां से निकाल बाहर करना चाहता हूँ। मैंने राजद्रोह नहीं विद्रोह किया है। इस अपराध के लिए हर सजा मुझे मंजूर है।"

2. शहंशाह नहीं रोते

अंतिम **मुग़ल सम्राट् बहादुरशाह जफ़र** जेल में थे। मेजर हडसन कुछ सिपाहियों के साथ सम्राट् के पास आया। एक-एक सैनिक के हाथ में थाल था।

मेजर हडसन ने बादशाह से कहा, "अंग्रेज मुग़ल बादशाहों को पहले भी ख़िराज देते रहे हैं, यह नज़राना भी कबूल कीजिए, शहंशाह।"

सैनिक ने थाल पर से रेशमी कपड़ा हटाया–सम्राट् के तीन बेटों के सिर उसमें थे।

बहादुरशाह ने कहा, "वीरों की औलाद ऐसे ही सुर्खरू होकर

अपने पिता के सामने आया करती है।''

हडसन ने व्यंग्य किया, ''आप कैसे पिता हो? अपने बच्चों के लिए दो आँसू भी नहीं बहाते।''

ज़फर ने दृढ़ स्वर में जवाब दिया, ''हडसन! शहादत पर जश्न मनाया करते हैं, मातम नहीं, और याद रखना शहंशाह रोया नहीं करते।''

3. तेग हिन्दुस्तानी की

बात उन दिनों की है, जब अंतिम मुग़ल बादशाह बहादुरशाह जफर को अंग्रेजों ने 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान देशद्रोही करार देकर रंगून की एक जेल में भेज दिया था। वहाँ उन्हें अपने वतन ही बहुत याद आती थी। जब वे बेचैन हो जाते, तो जेल के रखवालों से कभी-कभी यहाँ के विषय में चर्चा किया करते थे। जेल के रखवालों में से कुछ सिपाही थे तो हिन्दुस्तानी मूल के लेकिन बेहद अंग्रेज परस्त थे। एक दिन उनमें से एक रखवाले ने ज़फ़र साहब को चिढ़ाते हुए कहा-

''दमदमे में दम नहीं, अब खैर माँगो जान की,
ऐ जफ़र अब हो चुकी शमशीर हिन्दुस्तान की।''

ज़फ़र साहब ने तुरन्त ही पलट कर जवाब दिया,

''हिन्दियों में बू रहेगी, जब तलक ईमान की,
तख्ते लन्दन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की।''

जेल के पहरेदार अपना-सा मुँह लेकर रह गए।

4. शायरों की बेग़म

अन्तिम मुग़ल बादशाह बहादुर शाह 'जफर' के दरबार में मुशायरे का दौर चल रहा था। मिर्जा असदुल्लाह खाँ 'गालिब' और उस्ताद

इब्राहीम 'जौक' भी भाग ले रहे थे। उस्ताद जौक ने सभी शायरों का परिचय कराया और जब मिर्ज़ा गालिब की बारी आयी तो वह बोले–

"गालिब साहब के बारे में क्या कहा जाए, वह तो शायरों के बादशाह हैं।" गालिब बोले, "मैं इसके योग्य नहीं कि शायरों का बादशाह बन सकूँ। जौक ने कहा, "फिर बेग़म ही बन जाइए।"

5. राजा नाहरसिंह की दृढ़ता

अंग्रेजों के विरुद्ध 1857 की प्रथम आजादी की लड़ाई में **बल्लभगढ़ के राजा नाहरसिंह** ने प्रमुख भूमिका निभाई। अंग्रेजों ने उन्हें धोखे से कूटनीति द्वारा दिल्ली बुलाकर गिरफ्तार कर लिया। उन्हें फाँसी की सजा भी तय कर दी गई। अंग्रेज कप्तान हडसन उनकी वीरता का कायल था। कप्तान हडसन ने राजा के सामने अंग्रेजों की मित्रता का प्रस्ताव रखा।

स्वाभिमानी राजा नाहरसिंह ने साफ इंकार करते हुए कहा–"शत्रुओं के आगे सिर झुकाना मैंने सीखा नहीं। गोरे मेरे शत्रु हैं, उनसे क्षमा कदापि नहीं माँग सकता। लाख नाहरसिंह कल पैदा हो जायेंगे।" चाँदनी चौक में फव्वारे के निकट खुले में राजा नाहरसिंह को फाँसी देने की व्यवस्था की गई थी। यहाँ पर नीम का एक पेड़ था, उस पर ही फँदा तैयार किया गया था, राजा मुस्कराते हुए अविचल भाव से पेड़ के पास आकर खड़े हो गये।

9 जनवरी, 1858 का दिन था। पैंतीस वर्षीय युवा राजा नाहर सिंह निर्भयता पूर्वक फाँसी के फंदे को चूमने को तैयार थे। जनता के अश्रु थम नहीं रहे थे, किन्तु राजा के मुख मण्डल पर दिव्य शान्ति युक्त तेज था,

कैप्टन हड्सन ने सिर झुकाकर राजा नाहरसिंह की अन्तिम इच्छा पूछी।

उस दृढ़ महावीर ने कहा–"मैं तुमसे कुछ नहीं माँगता। मेरा संदेश इन भय–भीत दर्शकों को दे दो कि जो चिंगारी मैं छोड़े जा रहा हूँ, उसे बुझने न देना। देश की इज्जत अब तुम्हारे हाथ है।" हडसन ने यह संदेश आम लोगों को देने में अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी। अंग्रेज सरकार एक बलिदानी की अन्तिम इच्छा भी पूर्ण न करके उसके सामने असमर्थ हो गयी।

6. सन् सत्तावन के विद्रोह के नेता

सन् 1857 के विद्रोहियों के अग्रणियों में बिहार के **महाराज कुंअर सिंह** का नाम सदैव बड़े सम्मान के साथ लिया जायेगा। वे जब तक जीवित रहे। अंग्रेज आततायियों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा ऊँचा किये रहे। एक बार कुंअरसिंह शाहाबाद जाने के लिए नाव द्वारा गंगा पार कर रहे थे कि अंग्रेज सेना को इसका पता चल गया और सेनापति लुंगड़ ने किनारे से गोली चलाई, जो कुंअर सिंह के दाहिने हाथ की कलाई के निकट लगी। उन्होंने चट बायें हाथ से तलवार लेकर एक झटके में दाहिने हाथ को काटकर गंगा माता को समर्पित करते हुए कहा, "जो हाथ फिरंगी की गोली से अपवित्र हो गया हो। वह अब किस काम का रहा। अतएव यह तुम्हारी भेंट है।"

7. झांसी की रानी

मनु नाना साहब पेशवा की मुँहबोली बहन थी और उन्हीं के
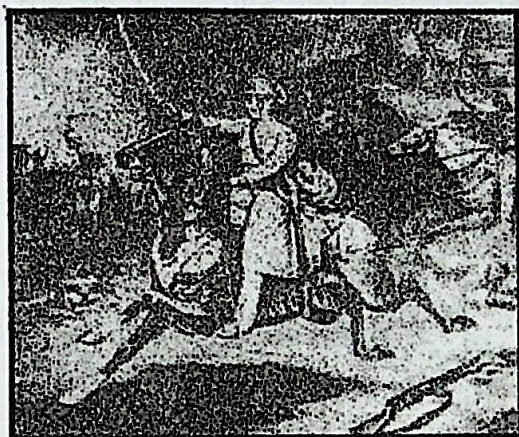
यहाँ रहती थी। एक दिन नाना साहब हाथी की सवारी कर रहे थे तो मनु भी जिद्द करने लगी कि मैं भी हाथी की सवारी करूँगी। लेकिन उसे किसी ने भी सवारी नहीं करने दी। उसके पिता ने कहा- 'तेरे भाग्य में हाथी नहीं हैं।' तब मनु ने रोते हुए कहा,

"मेरे भाग्य में एक नहीं दस-दस हाथी हैं।"

मनु की यह बात सच साबित हुई। 1848 ई० में उनका विवाह झांसी के राजा राव गंगाधर के साथ हुआ और उनके भाग्य में सिर्फ एक नहीं दस-दस हाथी थे। झांसी में ही उनका नाम मनु से लक्ष्मीबाई पड़ा। और वहीं पर उन्होंने अपनी दासियों को घुड़-सवारी सिखाई, बन्दूक व अन्य हथियार चलाने सिखाए। झांसी की रानी ने 1857 के विद्रोह में शत्रुओं के दाँत खट्टे कर दिये और वीरगति को प्राप्त हुई।

8. परख

झांसी की **रानी लक्ष्मीबाई** को घुड़सवारी का शौक तो था ही साथ ही उन्हें घोड़ों की भी अच्छी परख थी।

एक बार घोड़ों का एक व्यापारी दो एक जैसे दिखने वाले घोड़े लेकर किले में आया। उसने महारानी को घोड़े दिखाकर उनका दाम लगाने की प्रार्थना की। सभी को यह विश्वास था कि महारानी एक जैसे दोनों घोड़ों का दाम भी एक ही लगाएंगी; परन्तु महारानी ने निरीक्षण

करने के पश्चात् एक घोड़े का दाम तो एक हजार रुपए लगाया और दूसरे घोड़े का दाम मात्र 50 रुपए।

महारानी के निर्णय से सभी आश्चर्य चकित रह गये। जब राज्य के लोगों ने महारानी से कहा कि महारानी साहिबा, दोनों घोड़ों की शक्ल रंग, कद-काठी में कोई फर्क नहीं है फिर आपने दाम में इतना फर्क क्यों कर दिया? महारानी बोली- 'जिस घोड़े का मूल्य मैंने एक हजार रुपए लगाया है वह उत्तम कोटि का स्वस्थ घोड़ा है और जिस घोड़े का दाम मैंने 50 रुपए लगाया है, वह अंदर ही अंदर किसी रोग का शिकार है और उसकी आयु अधिक नहीं है।'

9. साहस की प्रतिमूर्ति

महारानी **लक्ष्मीबाई** का घोड़ा एक नाले को देखकर अचानक अड़ गया। उन्हें पीछा कर रहे अंग्रेज सैनिकों ने घेर लिया। रानी ने घोड़े की लगाम मुँह में थाम ली तथा दोनों हाथों से वीरता पूर्वक तलवार चलाती हुई शत्रुओं का संहार करने लगी। तब वह साक्षात् चंडी लग रही थी। अकस्मात् एक गोरे सिपाही ने रानी के सिर पर पीछे से वार किया। वार अचूक था। रानी का आधा सिर कट गया। घोड़े से गिरती रानी की अवश देह को उनके अंगरक्षक रघुनाथ ने थाम लिया, परन्तु गिरते-गिरते भी वे शत्रुओं की गर्दनें काटना नहीं भूली।

अब उनका अन्तिम समय था। रघुनाथ बिलखते हुए बोला-'महारानी जी! आपकी छाती से खून बह रहा है। आपका आधा सिर एक आँख सहित कट गया। अब क्या होगा?' रानी के होठ हिले, ''साहस मत छोड़ो, रघुनाथ किसी-न-किसी को तो स्वराज के भवन की नींव का पत्थर बनना ही था। मैं नींव का पत्थर बन रही हूँ। यह तो अच्छा हुआ जो मेरी आँख कट गयी, कम से कम मैं अपनी पराजय अपनी दो आँखों

से तो नहीं देख पाऊंगी।'' साहस और वीरता की प्रतिमूर्ति उस रानी ने मरते-मरते भी सिद्ध कर दिया कि औरतें वास्तव में अबला नहीं सबला भी होती हैं। ऐसा अनूठा उदाहरण इतिहास में अन्यत्र असंभव है।

10. लक्ष्मीबाई की चूड़ियाँ

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई बातचीत में पटु थीं। एक बार वह एक कथावाचक के यहाँ कथा सुनने गईं। वह बाल विधवा होने के बावजूद काँच की चूड़ियों की बजाए सोने की चूड़ियाँ पहनती थीं। उनकी कलाई पर सोने की चूड़ियाँ देखकर पंडित जी ने व्यंग्यात्मक टिप्पणी कसी, ''आजकल घोर कलियुग आ गया है। धर्म-कर्म की सारी मर्यादाएँ टूट गयी हैं। जो सधवा स्त्रियाँ कांच की चूड़ियाँ पहना करती थीं, वे ही विधवा होने के बाद सोने की चूड़ियाँ पहनने लग गई हैं। कितना आश्चर्य है?'' भरी सभा में किया गया व्यंग्य लक्ष्मीबाई को सहन नहीं हुआ, उनका सात्विक अभिमान जाग उठा। वे बोली, 'महाराज! आप को क्या पता हम सोने की चूड़ियाँ क्यों पहनती हैं? हम पति के जीते जी कांच की चूड़ियाँ इसलिए पहनती हैं कि पति का शरीर और हमारा सुहाग कांच की भाँति नाशवान् था। लेकिन शरीर छूटने पर उनकी आत्मा और हमारा सुहाग सुवर्णमय बन गया है। इसलिए हम सोने की चूड़ियाँ पहनती हैं।' पंडित जी लक्ष्मीबाई का स्वाभिमान भरा चेहरा देखते ही दंग रह गये।

11. समझौता वार्ता हिन्दी में हो

नाना साहब को कम्पनी सरकार बेहद खतरनाक मानती थी। सन् 1857 में जून 27 को नाना ने कांनपुर किले से अंग्रेज कम्पनी का

झण्डा उतरवा फेंका। अन्ततः जब अपनी पराजय स्वीकार कर अंग्रेजी फौज के जनरल व्हीलर ने संधि के लिए किले पर श्वेत ध्वज फहरा दिया तो नाना साहब ने आदेश करके तुरन्त युद्ध बंद करा दिया। फिर जब अंग्रेजों ने संधि वार्ता अपनी अंग्रेजी भाषा में प्रारम्भ की तो नाना साहब ने उसका निषेध कर कहा, "समझौता वार्ता हमारे देश की ही भाषा में होगी, अंग्रेजी में नहीं।" तब हिन्दी में ही संधि वार्ता हुई।

12. हिन्दवी साम्राज्य का सेनापति
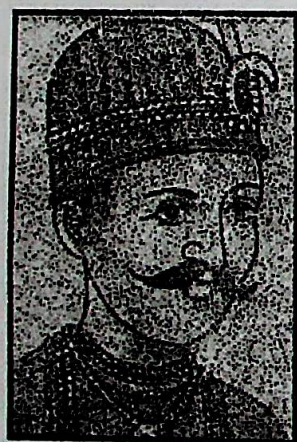
स्वातंत्र्यवीर सावरकर तात्या टोपे को छत्रपति शिवाजी के समान महान् सेनापति मानते हैं। सावरकर जी लिखते हैं– "श्री तात्या टोपे मानो पराभूत शिवाजी थे। छत्रपति शिवाजी महाराज के प्रयत्न को यश नहीं मिला, इतना ही दोनों में अन्तर था, किन्तु सेनापतित्व से दोनों समान थे।"

युद्ध क्षेत्र में होने वाली उनकी गतिविधियाँ इतनी वेगवान थीं कि बड़े-बड़े सेनापति दाँतों तले उंगली दबाते थे। बिग्रेडियर राबर्ट्स ने तात्या टोपे पर जब आक्रमण किया तो वें दहाड़ कर बोले, "हिन्दवी साम्राज्य का मैं सेनापति हूँ।"

तात्या की बहादुरी देख अंग्रेज हैरान हो गए। 18 अप्रैल, 1859 को तात्या टोपे को फाँसी की सजा दी गई।

13. क्रान्तिकारी वीर सावरकर की सीख

जिस दिन एडवर्ड सप्तम का राज्याभिषेक हो रहा था, उस दिन हमारे देश के कुछ चाटुकार भी खुशियाँ मना रहे थे और समारोह आयोजित कर रहे थे। महान् क्रान्तिकारी वीर सावरकर एक समारोह-स्थल पर पहुँचे और उन्होंने नौजवानों से कहा, 'धिक्कार है तुम्हें जो तुम ऐसी खुशियाँ मना रहे हो। तुम लोग एक ऐसे राजा का अभिषेकोत्सव मना रहे हो, जिसने तुम्हारी मातृभूमि को गुलाम बना रखा है। क्या तुम्हें यह अनुभव नहीं होता कि यह अभिषेकोत्सव नहीं है, बल्कि तुम्हारी गुलामी का उत्सव है? क्या तुम यह अनुभव नहीं करते कि विदेशी शासक के प्रति राजभक्ति का प्रदर्शन तुम्हारे अपने देश-जाति के प्रति द्रोह की अभिव्यक्ति है?

सावरकर के इस उलाहने से आयोजक शर्म के मारे गड़कर रह गये और उन्होंने सावरकर से क्षमा माँगते हुए अपना डेरा-डंडा समेट लिया।

14. वीर सावरकर का आत्म-विश्वास

ब्रिटिश हुकूमत ने वीर सावरकर को काले पानी की सजा देकर अंडेमान भेज दिया। उन्हें दो जन्मों (तकरीबन 50 वर्ष) की सश्रम कारावास की सजा दी गयी। उनके गले में '40 वर्ष कारावास' का पट्टा देखकर जेलर ने उनसे पूछा-'क्या तुम 50 वर्ष की सजा काटने तक जीवित रह सकोगे?'

वीर सावरकर ने बिना विचलित हुए बेसाख्ता कहा-'मैं तो जरुर जीवित रहूँगा

पर यह भी तय है कि ब्रिटिश हुकूमत की जड़ें इतनी अवधि से पहले ही भारत से नेस्तनाबूद हो जायेंगी।' इतिहास के पन्नें गवाह हैं, वीर सावकर की भविष्यवाणी अक्षरशः सच साबित हुई।

15. सच्चा पुरुषार्थ

छह अक्टूबर, 1910 को वीर सावरकर को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह की प्रेरणा देने तथा बम आदि शस्त्रास्त्र बनाने के आरोप में पचास वर्षों तक की कालेपानी की सजा दी गई।

अंडमान भेजे जाने से पूर्व डोगरी जेल में युवक सावरकर से मिलने उनकी पत्नी आयी। वह भावावेश में अश्रुधारा बहाती पत्नी की तीव्र मनोव्यथा का अनुभव कर रहे थे, परन्तु उन्होंने पत्नी से कहा, 'धीरज रखो, केवल संतान पैदा करना और खाना, पीना, मौज करना यही मानव जीवन का उद्देश्य नहीं है। ऐसा जीवन तो पशु-पक्षी भी बिता रहे हैं। हमें तो समाज तथा देश की दुर्दशा को मिटाना है और भारतमाता की गुलामी की बेड़ियों को चूर-चूर करना है। इसी उद्देश्य से हमने अपने व्यक्तिगत सुखों को त्यागकर, यह काँटों भरा मार्ग स्वेच्छा से अपनाया है। हमने स्वयं अपने हाथों से व्यक्तिगत स्वार्थों को तिलांजलि दे दी है, ताकि भारत के करोड़ों लोगों के कष्ट दूर हों, इसलिए चिन्ता न करो और धैर्य के साथ आने वाली आपदाओं को सहर्ष सहन करो। वही सच्ची मानवता है, इसी में सच्चा पुरुषार्थ है।'

16. त्याग की भावना

महान् क्रांतिकारी वीर दामोदर सावरकर की थोड़ी-सी जमीन नासिक जिले के 'मूगर' नामक गाँव में अंग्रेज सरकार ने जब्त कर ली।

स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् उस जमीन को प्राप्त करने के लिए उनके कुछ मित्रों ने प्रयास किया, परन्तु अपनी सरकार के रहते हुए भी उन्हें इस कार्य में सफलता नहीं मिली। इस पर एक मित्र ने 'सावरकर' से कहा- 'देखो, अपनी सरकार भी कितनी निष्ठुर है कि देश के लिए कटने-मरने वालों के प्रति भी दया भाव नहीं दिखलाती। तुम्हारे अधिकार की वस्तु को भी यह सरकार देने को कतरा रही है, तब वीर सावरकर ने शान्ति से उत्तर दिया, 'अरे भाई, अब हमें क्या चाहिए। लक्ष्य (स्वतंत्रता) प्राप्ति के बाद अब हमें किसी वस्तु की इच्छा नहीं है।'

17. परम भाग्य है, महापुण्य है

पूना (महाराष्ट्र) के तीन सगे भाई दामोदर हरि चाफेकर, बालकृष्ण हरि चाफेकर और वासुदेव हरि चाफेकर को क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण 1898 में फाँसी दे दी गयी। इन चाफेकर बन्धुओं के बलिदान पर वीर सावकर ने एक कविता लिखी। उसकी कुछ पंक्तियाँ ये हैं,

'हम सब होते सात बन्धु तो हँसकर दीपशिखा से जलते।
स्वतंत्रता के यज्ञ कुण्ड में समिधा से हम अर्पित होते।'

वसुन्धरे, तेरी बलिवेदी पर अपना जीवन तन-मन-धन सब, देना परम भाग्य है, महापुण्य है।

18. मैं गीदड़ नहीं हूँ

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी भाई परमानन्द जी को बिना कुछ बताए थाना नौलख की अंधेरी कोठरी में तीस दिन तक रखा गया, ताकि वह तंग आकर स्वयं क्रान्तिकारियों के बारे में बता दें, पर इस दंड का भाई जी पर कोई असर नहीं हुआ। एक दिन एक पुलिस अफसर सुखा सिंह उनसे

मिलने आया और कहा, 'भाई साहब, आप मुफ्त में तकलीफ उठा रहे हैं। सारा हाल बता क्यों नहीं देते?

'इतने दिन बाद आज पहली बार मुझसे कोई बात कर रहा है।' भाई जी ने उत्तर दिया, 'आप मुझसे क्या जानना चाहते हैं?'

अंग्रेज राज का वह पुलिस अफसर कहने लगा, 'अभी कुछ देर पहले एक आदमी ने आपके विषय में सब कुछ बता दिया है कि आप बड़े नेता हैं। आपका साथी करतार सिंह भी पकड़ा गया है।

भाई जी चुप रहे। सुखासिंह आगे कहने लगा, 'एक बार एक गीदड़ जाल में फँस गया। वह बड़ा चालाक था। उसने पकड़ने वाले से कहा, 'यदि तुम मेरी बात सुनोगे तो प्रलय आ जायेगा।' शिकारी ने कहा, 'अच्छा, बताओ क्या बात है? गीदड़ ने चीखकर कहा, 'यह मैं उस समय बताऊंगा जब मुझे छोड़कर कुछ दूरी पर खड़े हो जाओगे।' अन्त में कुछ हिचक के बाद शिक़ारी मान गया। फलतः गीदड़ थोड़ी दूर जा कर, 'आप मरे जग परले (प्रलय) कह कर भाग गया। जिस किसी तरह हो सके, जान बचा लेनी चाहिए। आप तो बुद्धिमान् और विद्वान् हैं।'

भाई परमानन्द का संक्षिप्त उत्तर था, 'खेद है मैं गीदड़ नहीं हूँ।'

19. क्रान्तिवीर भानसिंह का देशप्रेम

क्रान्तिवीर भानसिंह के हृदय में अपनी मातृभूमि के लिए अपार प्रेम था। जब ब्रिटिश सरकार ने उन्हें अंडमान की जेल में बन्द कर दिया तो भी वे मातृभूमि के गीत गाते रहे। भानसिंह का यह मातृभूमि गान जेल

के एक निर्दयी अधिकारी को पसन्द नहीं था। एक दिन जब भानसिंह देशभक्ति का गीत गा रहे थे, जेल का अधिकारी आया और खूब हँसने लगा। वह बोला, 'बन्द कर, बहुत हो चुका तेरा गीत गाना। आज मैं तेरा गीत गाना बन्द करके दिखाऊंगा।' भला भानसिंह कब चुप बैठने वाले थे? वे दहाड़ कर बोले, नहीं, गीत गाना मैं कभी बन्द नहीं करूंगा। चाहे मर ही क्यों न जाऊं। आखिरी दम तक मैं मातृभूमि का गीत गाऊँगा।' यह सुनना था कि निर्दयी अधिकारी की आँखों में खून उतर आया और वह भानसिंह पर गिद्ध की भाँति टूट पड़ा। भयंकर प्रहारों के बावजूद वह मातृभूमि का गीत गाते रहे और फिर मातृभूमि की गोद में आँखें मूंदकर सदा के लिए सो गये। भानसिंह मिट गये पर झुके नहीं। ऐसा था उनका देशप्रेम।

20. अगले जन्म में मातृभूमि की सेवा

भारतवर्ष में क्रान्ति का बिगुल बजाने वाले **सरदार करतार सिंह** को न्यायालय में हाजिर किया गया। न्यायाधीश द्वारा आंदोलन की सारी गतिविधियाँ पढ़कर सुनाई गईं। करतार सिंह ने सभी कार्यवाहियों को स्वीकार कर लिया और बोले, ''मैंने सभी जुर्मों को कबूल कर लिया है और मैं जानता हूँ। इन्हें स्वीकार करने के दो ही दण्ड मिल सकते हैं-एक काला पानी और दूसरा मृत्युदंड। इन दोनों में से मैं मृत्युदंड को ही ज्यादा पसंद करूँगा, क्योंकि इससे शीघ्र ही उसे दूसरा जन्म मिल जायेगा और मैं अपनी मातृभूमि की सेवा 'अगले जन्म' में भी कर सकूँगा।''

21. कुंदन बन जाए
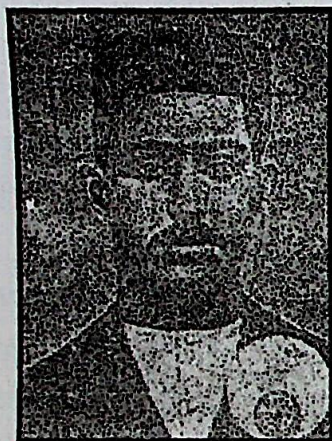
लाहौर बम कांड के **शहीद अवध बिहारी** से फाँसी के तख्ते पर एक अंग्रेज सिपाही ने पूछा-'क्या आप की कोई इच्छा है?'

'बस, यही कि अंग्रेजी साम्राज्य नष्ट हो जाये।' उन्होंने उत्तर दिया। 'अब इन बातों से क्या लाभ है? शान्तिपूर्वक ही प्राण त्यागिये।' सिपाही ने कहा – 'अब शान्ति कैसी? मैं चाहता हूँ आग भड़के, जिसमें तुम जलो, हम भी जले और हमारी गुलामी भी जले और हमारा भारत कुंदन बन जाये।' यह उत्तर था अवध बिहारी का और फिर उन्होंने फाँसी के तख्ते का आलिंगन किया।

22. महान् देशभक्त मास्टर अमीरचन्द
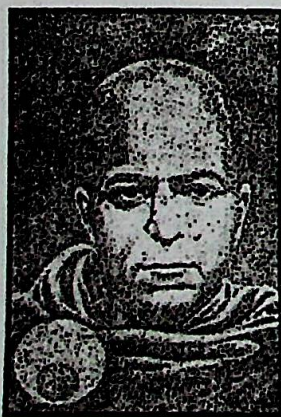
मास्टर अमीरचन्द महान् स्वतंत्रता सेनानी थे। 23 दिसम्बर, 1912 को दिल्ली के चाँदनी चौक में हुए बम विस्फोट में अमीरचन्द का हाथ बताया गया। स्वतंत्रता सेनानियों के घरों की तलाशियाँ हुईं। अवधबिहारी को बंदी बना लिया गया। अमीरचन्द के मकान की भी तलाशी ली गई। तलाशी में कुछ आपत्तिजनक सामग्री मिली। उन्हें भी बंदी बना लिया गया।

अदालत में उन पर मुकदमा चलाया गया। दिल्ली के बड़े-बड़े लोगों ने अमीरचन्द के पक्ष में गवाहियाँ दी, किन्तु अमीरचन्द के दत्तक पुत्र सुलतानचन्द ने सरकारी गवाह बनकर उनके विरुद्ध गवाही दी। उस दिन अमीरचन्द संभल नहीं सके और कोर्ट में ही रोने लगे। दत्तक पुत्र की गवाही के कारण ही उन्हें मृत्युदण्ड की सजा सुनाई गई, जिसे उन्होंने खुशी-खुशी स्वीकार किया।

23. शहीद मदनलाल धींगरा

लंदन में भारतीय क्रान्तिकारी विद्यार्थियों की गोष्ठी हो रही थी। किसी ने कहा कि एशिया में जापानी सबसे बहादुर हैं।

मदन लाल धींगरा ने असहमत होते हुए कहा इतिहास गवाह है कि भारतीय सबसे बहादुर हैं।

बात बढ़ने पर तय हुआ कि मदन लाल इस बात को सिद्ध करे। उनके कहने पर एक साथी ने एक दिन सुई उनकी हथेली के आर-पार कर दी जिससे खून टपकने लगा, लेकिन मदन लाल ने उफ तक नहीं की।

बंग-भंग के खलनायक कर्जन वायली का वध करने के अभियोग में 18 अगस्त, 1909 को मदन लाल धींगरा को फाँसी हो गयी।

24. स्त्री शक्ति का सम्मान

जनरल डायर पर गोली दाग निडर **उधमसिंह** जाने लगे-किसी को भी उन्हें पकड़ने की हिम्मत नहीं हुई। दरवाजे पर एक अंग्रेज महिला ने

हाथ फैलाकर रास्ता रोक लिया। उधमसिंह रुक गये। तब एक अंग्रेज सारजेंट में हिम्मत आयी। उसने उधमसिंह को पकड़ लिया। वह गिरफ्तार हो गये। उधमसिंह से वह अंग्रेज महिला जेल में मिलने आई। उसने पूछा- 'जब मैंने आपका रास्ता रोका तो आप मुझ पर गोली न चलाकर रुक क्यों गए? रिवाल्वर क्यों फेंक दिया?
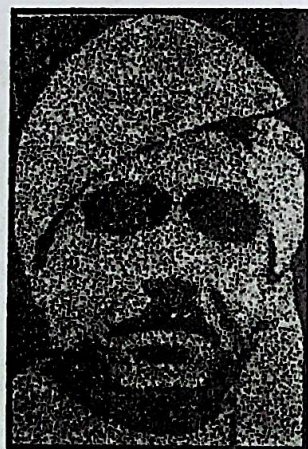
उधमसिंह ने हँसकर कहा- 'स्त्रियों, निरपराध, आबाल, वृद्धों और निहत्थों पर अत्याचारी अंग्रेज ही गोली चला सकते हैं, हिन्दुस्तान की संस्कृति स्त्री जाति पर वार करने की आज्ञा नहीं देती।''

25. एक देशभक्त का ईश्वर प्रेम

अमर क्रान्तिकारी भगतसिंह के दादा का नाम अर्जुन सिंह था। अर्जुन में देशभक्ति कूट-कूट कर भरी थी। वे देश को अंग्रेजों के चंगुल से बचाने के लिए अपनी एक टीम का गठन एक मेले में कर रहे थे। जब टीम का गठन हुआ, तो उनके साथियों ने अर्जुन सिंह को ही अपनी टीम का मुखिया नियुक्त किया। फिर सभी आजादी के दीवाने मेले में घूमने चले। घूमते-घूमते वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ गोदना-गोदने वाला, लोगों की देह पर मशीन से तरह-तरह की तस्वीर गाद रहा था, यह देखकर अर्जुन सिंह के अन्दर भी कुछ गुदवाने की प्रबल आकांक्षा पैदा हुई। गोदने वाला जब दूसरों की तरह हाथ पर चित्र या नाम गोदने को तैयार हुआ, तो अर्जुन सिंह ने एक तेज झटके के साथ अपना हाथ खींच कर कहा- 'मेरी छाती पर महर्षि दयानंद की वह आकृति, जो उनकी

ध्यानावस्था और अवधूत स्थिति की है, गूंद दो।' यह सुनकर उनके साथियों के साथ-साथ वह कारीगर आश्चर्य से अर्जुन सिंह का मुँह देखने लगा। इस पर अर्जुन सिंह ने बुलंद स्वर में कहा-'गुदवाना वहाँ चाहिए जो शरीर का सबसे पवित्र स्थान हो और जहाँ गूंदी आकृति सदा विद्यमान रहे।' अर्जुन सिंह की देशभक्ति और ईश्वर प्रेम के प्रति उनके साथी भी नतमस्तक हो गये।

26. यह मेरी नहीं

1937 में पंजाब विधानसभा के लिए अमृतसर में चुनाव होने थे। काँग्रेस के चुनाव प्रचार का काम सरदार किशन सिंह के जिम्मे था। एडवोकेट केशवराम ने इस कार्य हेतु उन्हें एक कार दे दी थी। चुनाव के बाद सरदार जी कार वापस करने गये तो केशवराम ने कार नहीं ली।

इस पर किशन सिंह कांग्रेस कार्यालय गए और यह कहकर कार छोड़ आए कि यह मेरी नहीं बल्कि कांग्रेस की संपत्ति है। पराई संपत्ति का मोह न रखने वाले ये महापुरुष शहीदे-आजम भगतसिंह के पिता थे।

27. वीर बालक भगतसिंह

एक सुन्दर स्वस्थ बालक, आँखें बन्द करके और हाथ जोड़कर पूजा कर रहा था। उसके सामने मेज़ पर कुछ मिट्टी रखी थी। उस मिट्टी पर फूल चढ़ाये गये थे। उसकी बहन ने उससे पूछा- 'भैया, किसकी पूजा कर रहे हो?' बालक ने उत्तर दिया- 'मिट्टी की। यह पवित्र
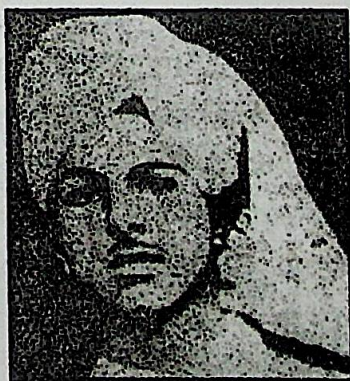
मिट्टी जलियांवाला बाग की है। इस मिट्टी में शहीदों का खून मिला है। आजादी चाहने वाले हिन्दुओं, सिखों और मुसलमानों का खून। आओ, तुम भी इसे प्रणाम करो और माथे पर लगाओ। यह था वीर बालक भगतसिंह, जिसने बड़े होकर देश की आजादी के लिए अंग्रेजों से ऐसी टक्कर ली, जिसका उदाहरण विश्वभर में नहीं मिलता।

28. शहीद (बालक) भगतसिंह

शहीद भगतसिंह को बचपन से ही शस्त्रों से बड़ा प्रेम था। एक बार बचपन में बालक भगतसिंह अपने पिता जी के साथ खेत में जा रहा था। बालक ने अपने पिता जी ने पूछा, 'पिता जी, ये लोग खेत में क्या कर रहे हैं? पिता ने उत्तर दिया,' अन्न के बीज बो रहे हैं? बालक तत्काल बोल उठा, 'अन्न तो हमारे गाँव में बहुत होता है, परन्तु तलवार-बन्दूक आदि कम होती हैं। खेत में इन्हें आप क्यों नहीं बोते?'

भगतसिंह जी में देशभक्ति की भावना इतनी कूट-कूटकर भरी हुई थी कि फाँसी पर झूलने से पहले भारत माँ की बेदी पर बलि होने के असीम हर्ष से उनका वजन बढ़ गया था।

29. वीर शिरोमणि भगतसिंह

शहीद भगतसिंह को 23 मार्च, 1931 को लाहौर जेल में सुखदेव और राजगुरु के साथ फाँसी दी गयी थी। ये तीनों 'भारत माता की जय', 'इंकलाब जिन्दाबाद' के साथ-साथ जेल में 'मां रंग दे बसन्ती चोला' गीत लयबद्ध होकर गाते रहते थे। शहीद भगतसिंह में जहां अपने परिवार के क्रान्तिकारी संस्कार पड़े थे, वहीं आर्यसमाज, आजादी, किसान-मजदूर के दर्द, समाजवाद-मार्क्सवाद ने उन्हें बहुत ही कम उम्र में कई

गुना प्रबुद्ध बना दिया था। यही कारण है कि उन्होंने अपनी शहादत की योजना को ऐसा व्यापक रूप प्रदान किया कि सम्पूर्ण देश की जनता जागृत हो उठी। तभी शहीद भगतसिंह को उस दौर का वीर शिरोमणि एवं शहीदे आजम कहा जाता है।

30. स्वतंत्रता का उन्माद

भगतसिंह को फाँसी की सजा सुनाई जा चुकी थी। निर्धारित दिन पल-पल करके समीप आ रहा था। मित्रों से जब उनकी अन्तिम भेंट करवाई गई तो शिव वर्मा की आँखों में आँसू छलक पड़े। अपने साथी शिववर्मा की यह हालत देखकर भगतसिंह कहने लगे- 'यह भावनाओं में बहने का समय नहीं है, दोस्त- मैं तो कुछ ही दिनों में सारे बंधनों से मुक्त हो जाऊंगा, परन्तु इस अधूरे, महायज्ञ का समूचा दायित्व अब आपके कंधों पर है और तुम लोगों को अभी बहुत लम्बा सफर तय करना हैं। मुझे विश्वास है कि अपने लक्ष्य पर पहुँचकर ही तुम दम लोगे।' और पलभर को सभी भविष्य की योजनाओं में खो गये।

इस प्रकार भगतसिंह ने बातों-बातों में ही स्वाधीनता संघर्ष की सारी बागडोर अपने साथियों को सौंप दी और उनमें नए उत्साह का संचार कर बड़ी सहजता से वातावरण को सुमधुर बना दिया। फिर जब वे विदा हुए तो उनके मुखेन्दु अनुपम छठा बिखेर रहे थे। स्वतंत्रता का इतना प्रचण्ड उन्माद था, भारत माँ के इस महान् सपूत में।

31. निः स्वार्थ भाव से देश सेवा

एक बार भगतसिंह ने बातचीत के क्रम में चन्द्रशेखर 'आज़ाद' से कहा, 'पंडित जी, हम क्रान्तिकारियों के जीवन-मरण का कोई

ठिकाना नहीं है, अत: आप अपने घर का पता बता दें ताकि खुदा न खास्ते अगर आपको कुछ हो गया तो आपके परिवार की कुछ सहायता की जा सके।'

उन्होंने ख़ीजते हुए कहा, 'पार्टी का कार्यक़र्ता मैं हूँ, मेरे परिवारी नहीं, अत: उनसे तुम्हें क्या मतलब है? दूसरी बात उन्हें तुम्हारी मदद की आवश्यकता नहीं है और न ही मुझे जीवनी लिखवानी है। हम लोग नि:स्वार्थ भाव से देश की सेवा में जुटे हैं। इसके एवज में न धन चाहिए और न ख्याति ही।' ऐसे नि:स्वार्थ देश भक्त थे चन्द्रशेखर 'आज़ाद'।

32. हँसने की शिकायत कहाँ करोगे?

'तुम देशद्रोही हो' सरकारी वकील चीखकर क्रांन्तिकारी शहीद भगतसिंह से बोला और भगतसिंह वकील की यह चीख सुनकर ठहाका लगाकर हँस पड़े।

'भगतसिंह! तुम इस प्रकार हँस कर न्यायालय की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचा रहे हों।' वकील फिर गरजा।

इस पर भगतसिंह फिर ठहाका लगाने लगे और फिर जब ठहाका रुका तो वे बोले- 'वकील साहब मैं तो जीवन भर इसी तरह हँसता खिलखिलाता रहूँगा। आज तो आप मेंरे हँसने की शिकायत इस न्यायालय से कह रहे हो। परन्तु एक दिन जब में फाँसी के फंदे पर भी ठहाका लगाऊंगा तब आप कौन-से न्यायालय में शिकायत करेंगे?'

यह सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोग दंग रह गये। वकील और न्यायाधीश एक-दूसरे का मुँह ताक रहे थे, आश्चर्यचकित होकर भारत माता के इस सपूत पर।

33. खुशी के आँसू

भगतसिंह जेल में फाँसी के दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी दौरान उनके घर से खबर आयी कि माँ अपने बेटे से आंखिरी बार मिलना चाहती हैं। भगत सिंह ने जेल से चिट्ठी लिखी–'माँ, तुम मुझसे मिलने मत आना। मुझे पता है जेल में मुझसे आखिरी बार मिलते समय तुम अपने आप को नहीं रोक सकोगी। तुम्हारी आँखों से आँसू बह निकलेगें। तब लोग ही कहेंगे कि भगतसिंह की माँ रो रही है। यह मुझे बर्दास्त नहीं होगा।' माँ ने बेटे की यह इच्छा पूरी की।

फाँसी से पहले जब उनसे आखिरी इच्छा पूछी गई तो भगतसिंह ने कहा– ''मैं जेल के बेबे (दलित) के घर का बना भोजन करना चाहता हूँ।''

बेबे के घर से भोजन बनकर आया। जब भगतसिंह चाव से भोजन कर रहे थे, तब बेबे की आँखों से खुशी के आँसू निकल पड़े।

34. चन्द्रशेखर आज़ाद की दृढ़ता

चन्द्रशेखर 'आजाद' बनारस में संस्कृत विद्यापीठ में पढ़ते थे। असहयोग आंदोलन का जमाना था। चन्द्रशेखर धरना देते हुए पकड़े गये। अदालत में अंग्रेज मजिस्ट्रेट ने उनसे पूछा –

'तुम्हारा नाम क्या है?' 'मेरा नाम आजाद है।'

'तुम्हारे पिता का क्या नाम है?'

'मेरे पिता का नाम स्वाधीन है।'

'तुम्हारा घर कहाँ है?' 'मेरा घर जेल खाना है।'

इस उत्तर से मजिस्ट्रेट तिलमिला गया। उसने 14 वर्षीय बालक चन्द्रशेखर को 15 बेतों की सजा सुना दी। हर बेंत की चोट के साथ चन्द्रशेखर 'भारत माता की जय' और 'महात्मा गांधी की जय' बोलते रहे।

35. ऐसी दृढ़ता थी, चन्द्रशेखर 'आज़ाद' में

बात सन् 1931 की है। 27 फरवरी को महान् क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर 'आज़ाद' और सुखदेव इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में बैठे थे। दो पुलिस अधिकारियों ने उन्हें देख लिया और खुफिया पुलिस के सुपरिण्टेण्डेंट नाट बावर को खबर दी। नाट बावर ने तुरन्त पार्क के समीप पहुँचकर अपनी मोटर रोक दी। पुलिस की मोटर देखकर आजाद का साथी तो बच निकला, किन्तु वे वहीं रह गए।
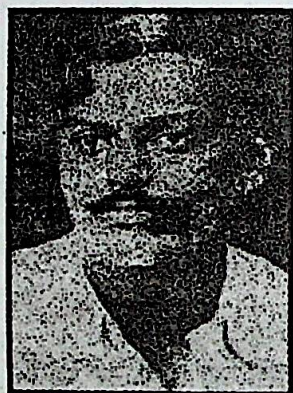
नाट बावर आजाद की तरह बढ़ा। दोनों तरफ से गोलियाँ चलीं। नाट बावर की गोली आजाद की जांघ पर लगी तो आजाद की गोली नाट बाबर की कलाई पर लगी। उधर और भी पुलिस वाले आजाद पर गोलियाँ चला रहे थे। आजाद पूरी सतर्कता से उनका मुकाबला करते रहे। अन्त में उनके पास केवल एक गोली रह गयी। उन लोगों से निपटे बिना बचना असंभव था। यह देखकर आजाद ने यह अन्तिम गोली स्वयं पर ही चला दी और अपनी इस प्रतिज्ञा को निभाया कि वे कभी जिन्दा नहीं पकड़े जाएंगे।

36. गीता और पिस्तौल

चन्द्रशेखर आजाद गीता की पुस्तक हमेशा अपने पास रखते थे। जब एक बार उनके साथी ने पूछा, 'एक तो आप धार्मिक पुस्तक 'गीता'

को अपने पास रखते हैं और दूसरी ओर गोली भरी पिस्तौल को अपनी संगिनी बनाये घूमते हैं? दोनों को एक साथ रखने का क्या तुक है? एक प्राण रक्षक है तो दूसरी प्राण घातक।'

इस पर चन्द्रशेखर आजाद बोले, 'मित्र तुम भूल रहे हो। दोनों में प्राणघातक कोई भी नही हैं। धर्म पुस्तक 'गीता' तो हमेशा मेरी प्रेरणा स्रोत है। यह तो हमें यह बताती है कि आतताइयों (अंग्रेजों) को मारना कोई पाप नहीं है। इन्हें सहन करना गीता की अवहेलना है। भला यह कैसे सम्भव है? गीता तो कर्म का संदेश देती है और पिस्तौल से मैं उस कर्म को पूरा करता हूँ जो वह मुझे बताती है।'

37. धैर्य की परीक्षा

अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद व उनके अन्य क्रान्तिकारी साथियों के बीच आगरा में गुप्त बैठक हो रही थी। आजाद अपने साथियों को बता रहे थे कि गिरफ्तार किये गये क्रान्तिकारियों से अंग्रेज बहुत ही अमानवीय व पीड़ादायक व्यवहार करते हैं। यातनाएँ इस कदर देते हैं कि कठोर से कठोर आदमी भी सब कुछ उगल दे।

आजाद की बात सुनकर राजगुरु को लगा कि उनका आत्मविश्वास डिगने लगा है। वे अपने साथियों के लिए चाय बनाने के लिए दूसरे कमरे में चले गये, जहाँ पर अंगीठी जल रही थी। चाय बनाते समय राजगुरु ने धधकती आग में संड़ासी डाल दी। जब संड़ासी लाल हो गयी तो फौरन उसे अपने सीने से लगा डाला। खाल जलने लगी पर उन्होंने उफ तक नहीं की और अपना सीना सात बार छेद डाला। जब काफी देर तक राजगुरु चाय लेकर नहीं आये तो चन्द्रशेखर और उनके साथी, जहाँ राजगुरु बैठे थे, वहीं आ गये। कमरे का दृश्य देखकर आजाद स्तब्ध खड़े रह गये। 'हाय रे' ये तूने क्या कर डाला?' यह कहते हुए आजाद व उनके साथी रोने लगे।

आजाद ने राजगुरु को अपनी छाती से लगाया, 'मुझे तुम पर गर्व है, राजगुरु!, आजाद ने कहा। ऐसे थे अमर शहीद क्रान्तिकारी राजगुरु!

38. आज़ादी के मतवाले

भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव काल कोठरियों से निकलकर फाँसी के तख्ते की ओर ऐसे गए मानों काल भैरव की बारात चलती हो। तीनों ने एक-दूसरे की ओर देखा, गले मिले। आँखों में विदाई के शब्द थे। होठों पर मुस्कान थी। परस्पर प्यार था, जो लुटाए नहीं लुट रहा था- तभी भगत सिंह के कण्ठ से मार्मिक गीत फूट पड़ा। अन्य दोनों साथियों ने भी अपने स्वर मिला दिए।

'दिल से निकलेगी व मरकर भी वतन की उलफत
मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ए-वतन आयेगी।'
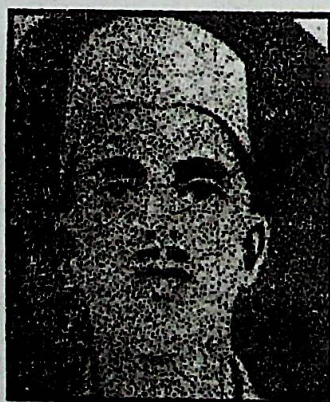
आजादी के मतवाले यह तराना गाते हुए फाँसी घर की ओर बढ़ गये। धन्य थे वे आज़ादी के मतवाले फौलादी इन्सान।

39. सहृदयता

हरी झंडी देखते ही रेलगाड़ी चल पड़ी। भीड़ दरवाजे तक भरी थी। कुछ लोग तो बाहर भी लटके हुए थे। पायदान पर लोहे का खम्भा पकड़े एक वृद्ध भी खड़ा था। वृद्ध की आँखें कातर भाव से भीड़ में किसी सहृदय को तलाश रही थीं। वह थकता जा रहा था। परन्तु उसकी मदद के लिये कोई आगे नहीं आ रहा था, अंदर आने का हर प्रयास असफल हो रहा था। इतने में खिड़की के पास बैठे युवक ने देखा कि बाहर किसी के कपड़े हवा में उड़ रहे हैं। 'अरे? कोई दरवाजे पर लटका है, चलो देखें।' उसका साथी बोला, 'यदि सीट चली गयी तो?' 'जायेगी कहाँ, ज्यादा से ज्यादा कोई बैठ जायेगा।' वे बाहर पहुँचे और लटके वृद्ध को अंदर ले जाकर सीट पर बैठाया। वृद्ध सजल नेत्रों से उन्हें आशीर्वाद दे रहा था। ये दोनों युवक भगतसिंह व राजगुरु थे।

40. बहादुर माँ : क्रान्तिकारी बेटा
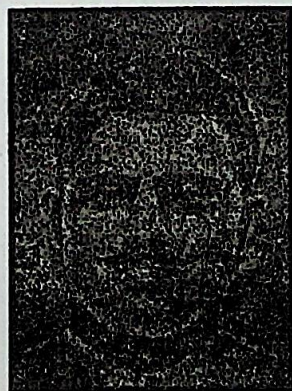
क्रान्तिकारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' की कर्मठता और निडरता के बारे में कौन नहीं जानता, जिन्होंने अपनी बहादुरी से अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया था। 1927 में उन्हें गोरखपुर की जेल में रखा गया था। 19 दिसम्बर को उन्हें फाँसी दी जाने वाली थी। उस दिन उस क्रान्तिकारी के माता-पिता उनसे मिलने आये। बिस्मिल नें आगे बढ़ पिता की चरणधूलि आँखों से लगाई। फिर वे उठे और 'माँ-मेरी माँ' कहते हुए माँ से लिपट गए। उनकी आवाज रुँध गई। माँ ने उन्हे कंधे से हटाया और आँखों में

आँखें डालकर बोली, 'मेरा बहादुर बेटा रो रहा है?' माँ की बात सुनकर रामप्रसाद मुस्कराए। बोले, 'माँ, ये आंसू मौत के भय के नहीं। मौत को तो मैं किसी भी घड़ी गले लगाने को तैयार हूँ। यह तो अपनी प्यारी मां को याद कर मेरी आँखों में आँसू आ गये। पता नहीं अगला जन्म मिले तो ऐसी स्नेहशील माँ मुझे मिलेगी कि नहीं?'

मां उसके आँसू पोंछते हुए बोली, 'बेटे बहादुरों को हमेशा ऐसी ही माँ मिलती हैं। देख, मैं खुद ईश्वर से प्रार्थना करके आई हूँ कि मुझे हर जन्म में तेरे जैसा ही बहादुर बेटा मिले।'

41. विलक्षण थे बिस्मिल

अमर शहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल' 16 दिसम्बर, 1929 कों 'वन्दे मातरम्' और 'भारत माता की जय' कहते हुए बड़ी शान से फाँसी के तख्ते के निकट गए और गर्जना की, 'मैं ब्रिटिश साम्राज्य का विनाश चाहता हूँ।' फिर 'विश्वानि देव सवितर दुरितानि' मंत्र पढ़कर फँदे पर झूल गए।

फाँसी चढ़ने से पहले बिस्मिल मुस्तैदी से दण्ड-बैठक लगा रहे थे कि अंग्रेज अफसर ने टोका, 'अब इसकी क्या जरुरत है, अब तो तुम फाँसी पर चढ़ जाओगे।' बिस्मिल का जवाब था, 'मैं चाहता हूँ कि मरते दम तक मेरा शरीर बलिष्ठ रहे, ताकि मैं दोबारा जब भी जन्म लूँ, इसी बल व ऊर्जा के सहारे देश सेवा में जुटा रहूँ।' बिस्मिल के ऐसे विचार सचमुच विलक्षण व स्मरणीय हैं।

42. पंडित रामप्रसाद बिस्मिल पर कविता का प्रभाव

स्वामी रामतीर्थ की 'स्वराज्य' में प्रकाशित मार्मिक एवं हृदय

स्पर्शी निम्नलिखित पंक्तियों ने क्रान्तिकारियों के इरादों को अधिक पक्का किया था। **पंडित रामप्रसाद 'बिस्मिल'** ने अपने गाँव शाहज़हाँपुर में 'भारत दुर्दशा' नाटक में ये अंकित पंक्तियां गायीं थीं, तब सभी श्रोताओं की आँखों से अश्रु बहने लगे थे। उन्हें इस कविता के सुनाने पर स्वर्ण पदक एवं पारितोषिक भी मिला था। बचपन की इस कविता के प्रभाव ने उन्हें क्रान्तिकारी और अमर बलिदानी बना दिया। कविता थी-

'देश की खातिर मेरी दुनिया में यह ताबीर हो,
हाथ में हो हथकड़ी पैरों पड़ी जंजीर हो।

शूली मिले फांसी मिले या कोई भी तकदीर हो,
पेट में खंजर दुधारा या जिगर में तीर हो।

आंख खातिर तीर हो मिलती गले शमशीर हो,
मौत की रक्खी हुई आये मेरे तस्वीर हो।

मरकर भी मेरी जान कर जहमत विला तारवीर हो,
और गर्दन पर धरी जल्लाद ने शमशीर हो।

इससे बढ़कर और दुनिया में अगर ताजीर हो,
मंजूर हो, मंजूर हो, मंजूर हो, मंजूर हो।

रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने अपनी फाँसी से तीन दिन पहले 16 दिसम्बर, 1929 को लिखे पत्र के अन्त में लिखा-

'मरते बिस्मिल, रोशन, लहरी अशफ़ाक अत्याचार से।
होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से॥'

43. बड़ा अफसोस होता है

विख्यात काकोरी केस के मुकदमे में क्रान्तिकारियों के खिलाफ

पं० जवाहर लाल नेहरू के सगे साले जगतनारायण 'मुल्ला' सरकारी वकील थे। 'मुल्ला' उनका उपनाम था। बहस के दौरान उनकी जुबान से काकोरी के अभियुक्तों के लिऐ मुल्जिम के बजाय 'मुलाजिम' शब्द निकल गया। मुल्जिम अभियुक्त को कहते हैं और मुलाजिम नौकर को। एक सरकारी नौकर का क्रांन्तिकारियों के लिए 'मुलाजिम' शब्द कहना रामप्रसाद बिस्मिल को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने भरी अदालत में श्री मुल्ला से कहा–

'मुलाजिम हमको मत कहिएं बड़ा अफसोस होता है।
अदालत के अदब से हम यहाँ तशरीफ लाए हैं।'
'कह देते हैं हम मौजे हवादिस अपनी जुअंत से
कि हमने आंधियों में भी चिराग अक्सर जलाए हैं।'

उस दिन तमाम साथियों ने वकील साहब के उर्दू ज्ञान का क़ाफी मजाक उड़ाया।

44. जिन्दगी के नियम

सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' को जिस दिन फाँसी दी जानी थी, उस दिन सुबह जल्दी उठ कर, वह हर रोज की तरह व्यायाम करने लगे। जेलर ने पूछा, 'आज तो आपको कुछ समय बाद फाँसी लगने वाली है, फिर व्यायाम से क्या लाभ?'

रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने मुस्करा कर उत्तर दिया, 'जीवन आदर्शों व नियमों से पूर्ण रूप से बंधा हुआ है। जब तक शरीर में साँस चल रही हैं, तब तक नियमों में व्यवधान आने देना उचित नहीं है? मैं अपना धर्म निभाने में लगा हूँ। कुछ देर बाद आप अपना कर्तव्य पूरा करना।'

जेलर बिस्मिल की बात सुन ठगा-सा खड़ा रह गया।

45. रोशन सिंह की जिन्दादिली

रोशनसिंह को इलाहाबाद की नैनी जेल में 19 दिसम्बर, 1927 को फाँसी की सजा दी गई। फाँसी से पूर्व अपने मित्र को लिखे पत्र के अन्त में उन्होंने लिखा–

'जिन्दगी जिन्दा दिली को जम ए रोशन।
वरना कितने मरे और जिन्दा हो जाते हैं॥'
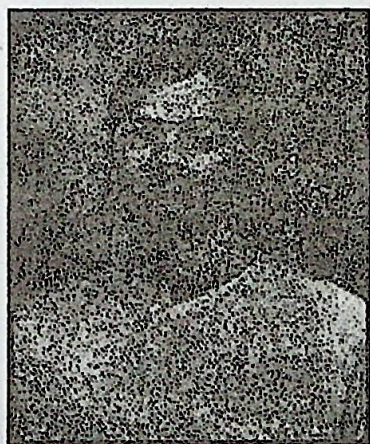
46. खुश रहो अहलेवतन हम तो सफर करते हैं

क्रांतिकारी राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी को 17 दिसम्बर, 1927 को गोंड़ा जेल में दो दिन पहले फाँसी दे दी गई। उन्होंने फाँसी से पहले बहुत ही निर्भयता से गाया–

'हम सरेदार बसर शौक जो घर करते हैं।
ऊँचा-सा कौम का हो नजर यह सर करते हैं॥

सूख न जायें कहीं पौधा यह आजादी का,
खून से अपने इसे इसलिए तर करते हैं।

इस गुलामी में तो कोई न खुशी आई नज़र
खुश रहो अहले वतन हम तो सफ्फर करते हैं॥'

47. देशभक्त पिंगले

क्रांतिकारी, महान् योद्धा पिंगले को एक गद्दार हवलदार ने मेरठ की छावनी में धोखे से गिरफ्तार करवा दिया। फाँसी 16 नवंबर, 1916 को होने वाली थी, पिंगले को फाँसी के तख्ते के पास खड़ा कर अन्तिम इच्छा पूछी गयी-'कुछ कहना चाहते हो?'

पिंगले बोले, 'दो मिनट की छुट्टी भगवान से प्रार्थना करने के लिये मिलनी चाहिए। पिंगले की हथकड़ियाँ खोल दी गयीं। पिंगले आकाश की ओर हाथ जोड़कर कहने लगा- 'हे भगवान्! तुम हमारे हृदय को जानते हो, जिस पवित्र कार्य के लिये आज हम जीवन की बलि चढ़ा रहे हैं; उसकी रक्षा का भार तुम पर है। भारत माँ इस जालिम ब्रिटिश हुकूमत के चंगुल से शीघ्र मुक्त हो, यही मेरी कामना है।'

प्रार्थना पूरी करने के बाद स्वयं ही फाँसी की रस्सी गले में डाल ली और शंखनाद किया- 'भारत माता की जय।' भारत माँ के इस लाड़ले को दुनिया ने वीर श्री विष्णु गणेश पिंगले के नाम से जाना।

48. चंद्रशेखर की राष्ट्रभक्ति

क्रांतिकारी गणेश शंकर 'विद्यार्थी' ने एक दिन चंद्रशेखर आजाद से पूछा, 'तुम्हारे माता-पिता तो अब काफी वृद्ध हो चुके होंगे। आजाद ने उत्तर दिया,' हाँ, मगर देश सेवा के कारण वे अपनी वृद्धावस्था के बारे में ज्यादा सोचते हैं। आखिर माता-पिता हैं। तुम मुझे उनका पता दो ताकि

मैं उन्हें कुछ रुपये भेजकर उनकी सहायता कर सकूँ', 'विद्यार्थी' बोले। इस पर चन्द्रशेखर ने कहा, 'आप वे रुपये मुझे दीजिए, मैं उन्हें भेज दूँगा।' 'ठीक है, यह कहकर' 'विद्यार्थी ने दो सौ रुपये आजाद को दे दिए।'

कुछ दिनों बाद 'विद्यार्थी' को पता चला कि आजाद ने वे दो सौ रुपये अपने माता-पिता को नहीं भेजे। इस पर उन्हें क्रोध आया और बोले, 'तुम कैसे पुत्र हो? तुम्हें अपने माता--पिता की वृद्धावस्था का भी ख्याल नहीं है।' आजाद ने कहा, 'इस देश में जितने वृद्ध हैं, वे सब मेरे माता-पिता हैं। उनको सुखी व स्वतंत्र बनाने के लिए मैंने वे दो सौ रुपये खर्च कर दिए।'

49. विद्यार्थी जी की सेवा भावना

गणेश शंकर 'विद्यार्थी' अपने सहयोगियों की विशेष चिंता करते थे। एक बार वे अपने एक सहयोगी के साथ रेल यात्रा कर रहे थे। अचानक रात में उठकर उन्होंने देखा कि उनके सहयोगी के पास ओढ़ने के लिए चादर नहीं है और वे ठंड से सिकुड़ रहे हैं। विद्यार्थी जी ने उन्हें अपना कम्बल ओढ़ा दिया और स्वयं हल्की-सी चादर लेकर सो गये। प्रात: आँख खुलने पर सहयोगी बंधु ने देखा कि गणेश शंकर 'विद्यार्थी' सर्दी से सिकुड़ रहे हैं। उन्हे नींद तो आई नहीं थी, बस लेटे हुए ही थे। विद्यार्थी जी ने अपने सहयोगी से पूछा: 'रात को नींद तो ठीक से आ गई थी न? इस पर सहयोगी ने कहा, 'आप रातभर सर्दी से ठिठुरते रहे और मैं' 'अरे, कुछ नहीं, विद्यार्थी जी ने बीच में टोकते हुए कहा, 'मुझे तो ऐसे

ही रहने की आदत है।' विद्यार्थी जी अपने सहयोगियों का कितना अधिक ध्यान रखते थे, उनका यह छोटा-सा उदाहरण है।

50. ऐसे थे गणेश शंकर 'विद्यार्थी'

पच्चीस मार्च सन् 1931 का दिन। कानपुर में भीषण दंगा हो रहा था। गणेश शंकर 'विद्यार्थी' नागरिकों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने में व्यस्त थे। बंगाली मोहल्ला में पचास-साठ मुसलमानों को बचाने के बाद वे श्री कन्हैया लाल के घर पहुँचे। वे अत्यंत थके थे। कन्हैयालाल जी ने उन्हें नाश्ता करने के लिए कहा।

विद्यार्थी जी ने कहा, 'जब तक आप इन मुसलमानों को अपने ही बर्तनों में पानी नहीं पिलाएंगे, मैं आपके घर कुछ भी नहीं खाऊँगा।'

गृहस्वामी ने तुरंत साथ में मुसलमान भाईयों को पानी पिलाया। तब विद्यार्थी जी ने नाश्ता किया।

इसके कुछ घंटे बाद ही विद्यार्थी जी की हत्या कर दी गई।

51. आजादी के लिए कुछ भी कर सकता हूँ

गाजीपुर के महन्त सख्त बीमार थे। उन्होंने रामकृष्ण खत्री से कहा, 'आपकी निगाह में अगर कोई सुशील सच्चरित्र लड़का हो, तो बताए उसे अपना शिष्य बनाकर इस मठ की व्यवस्था उसके सुपुर्द करना चाहता हूँ।'

खत्री जी क्रांतिकारियों के साथ काम कर रहे थे। उन्होंने इसकी चर्चा की तो चन्द्रशेखर 'आज़ाद' शिष्य बनने को तैयार हो गये।

खत्री जी ने कहा 'तुम पागल तो नहीं हो? साधु बनोगे? सिर घुटवाना पड़ेगा, दीक्षा लेनी पड़ेगी और सेवा करनी होगी। दिन-रात मठ में रहना होगा।'

आजाद ने कहा, 'मठ में काफी संपत्ति है। हमारी पार्टी को धन की बहुत आवश्यकता है। अगर धन होगा तो पार्टी मजबूत होगी तो हम जल्दी से जल्दी देश को आजाद करवा देगें। अपने देश को आजाद करवाने के लिए मैं कुछ भी कर सकता हूँ।'

52. सर्वस्व अर्पण
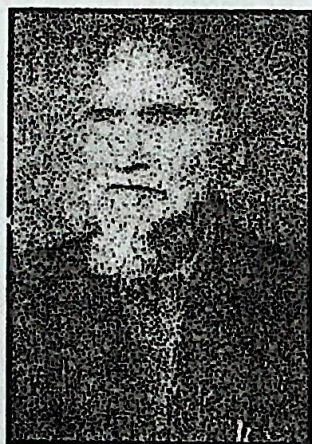
क्रान्तिकारी राजा महेन्द्र प्रताप के मन में मानवता की भावना दिनों दिन प्रबल होती जा रही थी। देश-विदेश की यात्राओं से उन्होंने स्वदेश की गरीबी और गुलामी की पीड़ा का पूरी तरह अनुभव कर लिया था। वृन्दावन में रहते हुए मन्दिरों में वर्तमान जातिगत दशा को देखकर भी उनका मन बहुत खिन्न रहता था। मनुष्य-मनुष्य के बीच जाति के नाम पर ऊँच-नीच, अस्पृश्यता, पूजा-उपासना निषेध आदि को राजा साहब मानवता पर कलंक मानते थे, उनकी दृष्टि में जाति, वर्ण, रंग, देश आदि के द्वारा मानवता को विभक्त करना घोर अन्याय है, पाप है, अत्याचार है। ब्राह्मण और भंगी को वे भेद-बुद्धि से देखने के पक्ष में नहीं थे। इसलिए अपने विद्यालय में जाति, वर्ण के नाम पर कोई भेद उन्होंने स्वीकार नहीं किया। निर्धन, असहाय और निम्न जाति के बच्चों को प्रोत्साहित करने के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था की और खान-पान में समान स्थान दिया। एक साथ बैठकर भोजन की परिपाटी डाली और अस्पृश्यता को कलंक ठहराया। इस कार्य के लिये उन्होंने अर्थ की व्यवस्था की। अर्थ व्यवस्था का प्रश्न आने पर उन्होंने अपनी चल-अचल सम्पत्ति का ट्रस्ट बनाया और सर्वस्वदान दे दिया।

उनका यह दान उसी प्रकार का था जैसा कि पुराणकथाओं में चक्रवर्ती राजाओं का कहा जाता है। अपना सर्वस्व प्रजाहित के लिए दान देकर चक्रवर्ती राजा गंगा के तट पर खड़े हो जाते थे और संकल्प पाठ करते थे कि जो कुछ मेरी सम्पत्ति है वह राष्ट्र कल्याण के लिए अर्पित है। ठीक इसी तरह का सर्वस्व दान यमुना नदी के केशी घाट तट पर राजा महेन्द्र प्रताप ने किया था। तीस हजार वार्षिक आय के पाँच गाँव, तीन महल, सेवकों के आवास गृह, उद्योग आदि सब प्रेम महाविद्यालय ट्रस्ट को भेंट कर दिये थे।

53. तकनीकी विद्यालय की स्थापना

विदेश यात्रा के बाद से क्रान्तिकारी महेन्द्र प्रताप के मन में एक ऐसे विद्यालय की स्थापना की भावना उत्पन्न हो गई थी, जिसमें शिक्षा प्रास कर बालक स्वावलम्बी हो सकें और अपने लघु उद्योग-धंधे शुरु कर सकें। जापान में उन्होंने स्कूल के बच्चों को इस प्रकार काम सीखते और करते हुए देखा था। उस समय भारत में तकनीकी ज्ञान की तरफ किसी का ध्यान नहीं गया था। अंग्रेज शासक भारतीयों को स्वावलम्बी बनाना ही नहीं चाहते थे। उन्होंने तो भारत के उद्योग-धंधों को समूल नष्ट करने का भरसक प्रयास किया था। इसलिए शिक्षा विभाग से या प्रशासन से इस दिशा में किसी प्रकार की सहायता का प्रोत्साहन का प्रश्न ही नहीं था। लेकिन टेक्निकल स्कूल के लिए प्रारम्भ में ही साज-सामान मशीन आदि की आवश्यकता होती है। उसके लिए आर्थिक साधनों की अपेक्षा रहती है। राजा साहब ने इस समस्या का हल निकाल लिया। उन्होंने अपने मन में निश्चय किया कि अपनी समस्त सम्पत्ति, मकान, महल गाँव इस कार्य के लिए समर्पित कर दूँगा और तकनीकी शिक्षा के लिए अपने आवास-महल में ही विद्यालय खोलकर कार्य प्रारम्भ किया जायेगा। विद्यार्थियों

से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जायेगा। गरीब विद्यार्थियों के आवास और भोजन की भी निःशुल्क व्यवस्था की जायेगी। यह एक बहुत बड़ा संकल्प था, जिसके पूर्ण करने में उन्होंने किसी दूसरे व्यक्ति से परामर्श भी नहीं लिया था। अपनी पत्नी तथा परिवार के लोगों को भी इस सर्वस्वत्याग की बात नहीं बताई थी। यह राजा साहाब का अपना दृढ़ मानस संकल्प था, जिसे उन्होंने सन् 1909 में साकार कर दिखाया।

54. अमर शहीद मदनलाल ढींगरा

शहीद शिरोमणि मदनलाल ढींगरा भारत के उन अमर क्रान्तिकारियों में से थे, जिन्होंने हँसते-हँसते फाँसी के फँन्दे को चूम लिया था। लन्दन की एक सभा में सन् 1907 में उस वीर ने सर कर्जन वायली की साहसपूर्ण हत्या कर दी थी। उस वीर को बचाने के लिए भरसक प्रयत्न किया गया, परन्तु उन्हें बचाने का प्रयत्न करने वाले डॉ० लाल काका नामक भारतीय को भी अंग्रेज सरकार ने फाँसी दी। वीरवर मदन लाल ढींगरा ने अदालत में अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहा-

'मैं यह स्वीकार करता हूँ कि उस दिन मैंने अंग्रेज का रक्त बहाने की चेष्टा की थी, पर यह इसलिए कि अंग्रेज सरकार अमानुषिक रूप से जो हिन्दुस्तानी देश-भक्तों को फाँसी देती और कालेपानी भेजती है, उसका मैं एक साधारण बदला ले सकूँ। इस काम में मैंने किसी की भी सलाह नहीं ली है। बल्कि मैंने केवल अपनी अन्तरात्मा से पूछा है और अपने कर्तव्य का पालन किया है।'

'मेरा विश्वास है कि संगीनों की मदद से जब कोई जाति किसी जाति को परतन्त्र करती है, तब वह परतन्त्र जाति उस जाति से एक स्थायी युद्ध की दशा में रहती है। इसलिए मैंने अपना तमंचा निकाला और शत्रु पर अचानक हमला किया।'

'एक देशभक्त के नाते मेरा विश्वास है कि मेरे देश का अपमान करना साक्षात ईश्वर का अपमान करना है। मेरे देश की पूजा श्री रामचन्द्र की पूजा है, देश की सेवा श्री कृष्ण की सेवा है। मेरे जैसा निर्धन और मतिमन्द पुत्र माता की आराधना के लिए अपने रक्त के अतिरिक्त और क्या दे सकता है? आज मैं अपना वही रक्त अपनी माता की बलिवेदी पर चढ़ा रहा हूँ।'
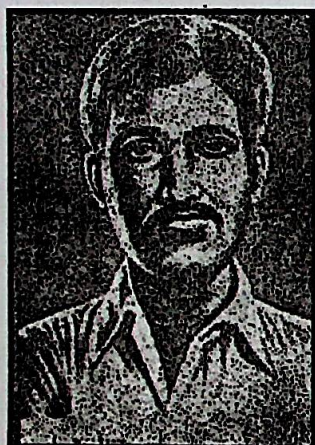
55. वह लड़का

भारत परतंत्र था। एक लड़का देश-भक्तों की मदद करता था। उसकी माँ यह देखकर खुश होती थी, किन्तु उसे डर था कि कहीं वह पुलिस के हाथ में पड़कर घबरा न जाय और छिपकर काम करने वालों के नाम पते न बता दे।

उसने बेटे की परीक्षा ली। दीया जलाया और बेटे से कहा, 'इसकी लौ पर हाथ रख दे।'

बालक ने तत्काल ऐसा ही किया। हाथ जलता रहा, पर उसके मुँह से उफ तक न निकली। वह मुस्कराता रहा। यह लड़का था- अशफ़ाक उल्लाह, जो आगे चलकर महान् क्रांतिकारी बना, जब उन्हें फाँसी के तख्ते पर लटकाया गया, तो वह इतने प्रसन्न थे, मानो जीवन की सबसे बड़ी साध पूरी हुई हो।

56. क्रान्तिगीत

अशफ़ाक उल्ला ख़ाँ को 19 दिसम्बर, 1927 को फैजाबाद की जेल में फाँसी दे दी गई। फाँसी से पहले उन्होंने जेल की कोठरी में अनेक

क्रांतिगीतों की रचना की थी। फाँसी के फँदे को चूमते हुए उनकी बुलन्द आवाज़ गूंजी थी–

'तंग आकर हम भी उनके जुल्म के बेदाद से।
चल दिये सूये अदम जिन्दा ने फैजाबाद से॥'

57. इबादतगाह जान से ज्यादा अज़ीज है

उपद्रव के दिनों में शाहजहाँपुर में आर्यसमाज मंदिर की ओर दंगाइयों की भीड़ बढ़ रही थी। उपद्रवी मंदिर को फूंक देना चाहते थे। अशफाक ने पहले उन्हें समझाने की चेष्टा की, परन्तु उपद्रवियों पर तो जुनून सवार था। कोई रास्ता न देखकर अशफाक ने पिस्तौल हाथ में ले ली और अकेले मंदिर के द्वार पर जाकर खड़े हो गये। भीड़ मंदिर के समीप पहुँची तो अशफ़ाक ने पिस्तौल तानकर कहा, 'इबादतगाह चाहे किसी भी मजहब की हो, मुझे जान से ज्यादा अज़ीज है। मेरी पिस्तौल में छह गोलियाँ है। अगर किसी ने इबादतगाह को नुकसान पहुँचाने की कोशिश की तो मैं उसकी जान ले लूँगा। भीड़ अशफ़ाक के तेवर देखकर पीछे हट गयी।

58. असली काफिर

काकोरी कांड में **चंद्रशेखर 'आज़ाद'** को छोड़कर अधिकतर क्रान्तिकारी गिरफ्तार हो चुके थे। उनमें रामप्रसाद बिस्मिल तथा अशफ़ाक उल्ला खां भी थे। मुकदमे के दौरान अशफ़ाक को तोड़ने के उद्देश्य से अंग्रेज सरकार ने एक मुस्लिम अधिकारी को जेल भेजा। उसने अशफ़ाक उल्ला से कहा–

'अशफ़ाक, तुम तो खुदा के बंदे हो। इस्लाम तुम्हारा दीन है।

तुम्हारा अज़ीज दोस्त रामप्रसाद तो हिन्दू, काफिर है। काफिर का साथ देना क्या एक मुसलमान के लिए वाजिब है?

अशफ़ाक उसका प्रलाप सुनते रहे। 'काफिर का साथ देना इस्लाम की उदूली है। अंग्रेज चले गए तो हिन्दुस्तान पर इन काफ़िरों का ही राज होगा। क्या तुम ऐसे राज में रहना पसन्द करोगे?' अधिकारी बोलता चला गया।

अब अशफ़ाक से न रहा गया। 'मैं और रामप्रसाद एक ही मिट्टी से पैदा हुए हैं-हिन्दुस्तान की मिट्टी, हमारी माँ एक है। हम सगे भाई हैं। हमारा एक ही मज़हब है-वतन परस्ती। मैं अंग्रेजों का साथ देकर भारत माँ की कोख को शर्मिंदा नहीं करना चाहता।......हरगिज नहीं करूँगा।'

अधिकारी की मुठ्ठियाँ भिच गईं- चेहरा तमतमा गया। तभी आग में घी डालते हुए अशफ़ाक ने कहा- 'असली काफ़िर तो तुम हो, जो इस मिट्टी में पैदा होकर अंग्रेजों की गुलामी करते हो।'

59. मेरे राम

प्रसिद्ध **क्रांतिकारी रामप्रसाद 'बिस्मिल'** आर्य समाजी थे और उनके साथी अशफ़ाक उल्ला खाँ पाँच वक्त की नमाज के पाबंद मुसलमान थे। एक बार तेज बुखार में अशफ़ाक को सन्निपात हो गया तो उन्होंने बेहोशी की हालत में 'राम-राम' की रट लगा दी। लोग कहने लगे कि अशफ़ाक काफिर हो गये। अशफ़ाक की बीमारी की सूचना बिस्मिल को मिली तो वह सारे काम छोड़कर भागे चले आये, अशफ़ाक की हालत देखकर बिस्मिल रो पड़े, आँसुओं के स्पर्श से अशफ़ाक ने आँखे खोलीं और सामनेर्षबिस्मिल को देखकर एक अनजानी शक्ति के वशीभूत उठ बैठे, 'तुम आ गए राम! बस अब मुझे दवाई की जरुरत नहीं। मैं ठीक हो जाऊँगा'। दोनों मित्र देर तक एक-दूसरे से लिपटे रहे।

60. राम के बिना जीवन बेकार है

रामप्रसाद 'बिस्मिल' और अशफ़ाक- दोनों की फाँसी की सजा हो चुकी थी। कुछ लोगों ने मिलकर अशफ़ाक को जेल से छुड़ाने की योजना बनाई और इसकी जानकारी अशफ़ाक को दी। अशफ़ाक कुछ देर गम्भीर बने रहे, फिर बोले, 'रामप्रसाद को भी फाँसी की सजा हो चुकी है। राम के बिना अशफ़ाक का जीवन बेकार है।'

अशफ़ाक ने जेल से भागने से इन्कार कर दिया और फाँसी के फंदे का रास्ता अपनाया, जो उसके राम तक जाता था।

61. गुलामी का रोग हटाना ही पड़ेगा
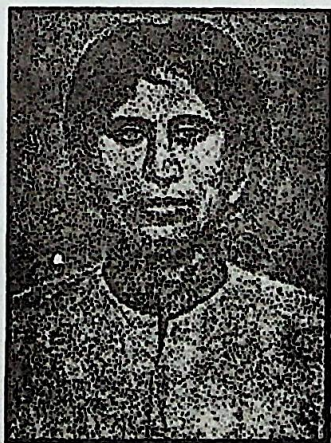
अमर बलिदानी 19 वर्षीय देशभक्त खुदीराम बोस एक बार मंदिर गए। मंदिर के सामने कुछ लोग जमीन पर लेटे थे। खुदीराम ने पूछा, 'ये लोग क्यों लेटे हैं?'

उत्तर था, 'ये किसी रोग से पीड़ित हैं। भगवान् इन्हें स्वप्न में दर्शन देकर रोग से छुटकारे का वचन दें, तभी वे अन्न-जल ग्रहण करेंगे।'

खुदीराम ने कहा, 'क्या एक दिन मुझे भी इनकी तरह जमीन पर लेटना पड़ेगा?

'तुम्हें कौन-सा रोग है?' एक व्यक्ति ने पूछा

खुदीराम हँसकर बोले, 'गुलामी से ज्यादा बुरा कौन-सा रोग है?' मुझे किसी दिन उसे हटाना ही पड़ेगा।'

62. विप्लवी खुदीराम बोस

स्वदेशी आन्दोलन के दौरान कलकत्ता के पुलिस मजिस्ट्रेट मि० किंग्सफोर्ड ने सुशील सेन नामक बालक को बेतों से पिटवाया। क्रांतिकारी इस घटना का बदला लेना चाहते थे। पुलिस को पता चला तो किंग्सफोर्ड का तबादला मुजफ्फरपुर कर दिया गया। खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी नाम के दो युवकों को किंग्सफोर्ड की हत्या के लिए भेजा गया। 30 अप्रैल, 1908 को उन्होंनें किंग्सफोर्ड की गाड़ी पर बम फेंका, लेकिन उसमें किंग्सफोर्ड नहीं था, दूसरा ही व्यक्ति सवार था। खुदीराम गिरफ्तार हो गए। प्रफुल्ल चाकी ने मोकामा स्टेशन के पास गिरफ्तार होने से पहले आत्महत्या कर ली खुदीराम को फाँसी सुनाई गई, जिसे उन्होंने सहर्ष गले लगा लिया। दुनिया ने देखा कि देश के लिए विप्लवी केवल खून ही नहीं करते, अपना बलिदान भी देते हैं।

63. सार्थक चूड़ियाँ

सुशीला दीदी एक तेजस्वी क्रांतिकारी देशभक्त महिला थीं। काकोरी ट्रेन लूट कांड के सिलसिले में रामप्रसाद 'बिस्मिल', अशफाकुल्ला खाँ, ठा० रोशनसिंह आदि क्रांतिकारियों पर मुकदमा चलाया जा रहा था। मुकदमे की पैरवी तथा क्रांतिकारियों के परिवारों के लिए धन की आवश्यकता थी।

लाहौर के नेशनल कॉलेज के अध्यापक जयचंद्र विद्यालंकार गुप्त रूप से धन संग्रह करते-करते सुशीला दीदी के पास दिल्ली जा पहुँचे। 'दीदी' को जब उन्होंने आर्थिक संकट की बात बताई तो उन्होंने अपने दोनों हाथों से सोने की चूड़ियाँ उतारीं और जयचंद्र जी को सौंपते हुए बोली, 'मेरे पास रुपया तो है नहीं, आज मेरी ये चूड़ियां सार्थक हो गयीं। इन्हें बेचकर धन

मुकदमें में लगा दीजिए। जयचंद्र विद्यालंकार ने सुशीला दीदी की चूड़ियाँ हाथों में लीं।' इस त्याग को देखकर उनकी आँखें नम हो उठीं।

64. दुर्गा भाभी का त्याग

आजादी के बाद पंजाब के मुख्यमंत्री दरबारा सिंह ने एक समारोह में क्रांतिकारी दुर्गा भाभी को सरकार की ओर से भेंट दी। भाभी ने उसी समय मुख्यमंत्री को वे रुपए वापस करके कहा- 'यह धन शहीदों की कीर्ति रक्षा में व्यय किया जायें।' बाद में किसी ने उनसे पूछा-'भाभी! आपकी दो-दो विवाह योग्य पुत्रियाँ हैं फिर रुपए क्यों लौटा दिए?'

वह बोलीं- 'शहीद्र किसी प्रान्त में नहीं बसे होते-शहीदों ने पंजाब में ही नहीं पूरे देश में काम किया है।' अतः राजघाट की तर्ज पर उनकी याद में एक 'कालघाट' बनाया जाए।

65. बहनों की शहादत

अंग्रेजों के खिलाफ़ आजादी की लड़ाई चल रही थी। पटना में कुछ बहनों ने सचिवालय पर झंडा फहराने का निश्चय किया। वे एक टोली में तिरंगा झंडा लेकर चल दीं। पुलिस ने ललकारा, 'रुक जाओ।'

पर पुलिस से कौन डरने वाला था? टोली आगे बढ़ी।

'ठहरो......ठहरो।' पुलिस दहाड़ी, 'एक कदम भी आगे रक्खा तो

हमें गोली चलानी पड़ेगी।'

पर गोली के भय से उनके कदम कहाँ रुकने वाले थे?

'वन्देमातरम्' के नारे के साथ वे जैसे ही आगे बढ़ीं कि सबसे आगे की बहन के सीने में गोली लगी। वह गिरी और झंडा नीचे हो कि उसके पीछे की लड़की ने झंडे को हाथ में ले लिया।

वे सब बहनें शहीद हो गईं, पर उनके नाम अमर हो गए।

66. रामरखी की तपस्या

भाई बालमुकुन्द ने देश की स्वतंत्रता के लिए प्राणों की बलि दी। दिल्ली के चाँदनी चौक में हुए बम विस्फोट में उन्हें सन् 1915 में फाँसी का दण्ड सुनाया गया। इनकी पत्नी का नाम रामरखी था। जब भाई बालमुकुन्द को जेल में बन्द कर दिया गया, तो रामरखी उनसे मिलने आई और पूछा, 'जेल में क्या खाते हो?'

बालमुकन्द जी ने जवाब दिया, 'सूखी रोटियाँ'।

'कहाँ सोते हो?'

'जमीन पर, चाहे सर्दी हो या गर्मी।'

रामरखी बहुत दुखी हुई और घर आकर स्वयं भी सूखी रोटियाँ खाने लगीं, जमीन पर सोने लगीं और फटा कम्बल ओढ़ने लगी। जिस दिन भाई बालमुकुन्द को फाँसी हुई, उस दिन वे भी नहा-धोकर चबूतरे के पास बैठ गईं।

67. नारी-शक्ति

बात स्वतंत्रता संग्राम के दिनों की है। लाहौर षड्यंत्र केस के क्रांतिकारियों में से ब्रह्मदत्त मिश्रा इकबालिया गवाह बन गये थे। जेल में

उनकी माँ उनसे मिलने आईं, परन्तु उनकी पत्नी ने तो मिलने से भी मना कर दिया।

पत्नी ने उनकी माँ से कहा- 'जो व्यक्ति अपने साथियों के प्रति ईमानदार नहीं, वह अपनी पत्नी के प्रति भी ईमानदार नहीं हो सकता।'

उनकी माँ ने आकर उनसे कहा- 'मुझे पता होता कि तू बड़ा होकर मेरी कोख को कलंक लगाएगा तो मैं उसी समय तेरा गला घोट देती।' इसका असर हुआ। दस महीने बाद वह अपने बयान से मुकर गये।

नारी-शक्ति महान् होती है, यह मनुष्य को गिरने से बचाकर खड़ा कर देती है।

68. वह जापानी माँ

घटना 1904-05 में हुए रूस-जापान युद्ध की है। इस लड़ाई में एक अत्यन्त वृद्ध महिला के सभी नाते रिश्तेदार मारे गये; जिनमें उसका पति, भाई और पुत्र सम्मिलित थे। उस बूढ़ी महिला ने इन दुखों को स्थितप्रज्ञ के समान बड़े धैर्य के साथ सहन किया। अन्त में, जब युद्ध में उसका छोटा पुत्र और परिवार का अंतिम पुरुष सदस्य वीरगति को प्राप्त हुआ तो उसके धैर्य का बांध टूट गया। वह बिलखने लगी परन्तु अटूट अश्रुधारा के समय भी बोल उठी-'मैं रो रही हूँ किन्तु इन आँसुओं का गलत अर्थ नहीं लगाया जाये। मैं इसलिए नहीं रो रही कि मेरा सारा परिवार समाप्त हो गया। मैं तो इसलिए रो रही हूँ क्योंकि मुझ में और संतानों को जन्म देने की सामर्थ्य अब नहीं। अब मैं अपने सम्राट् को युद्ध के लिए और योद्धा प्रदान नहीं कर सकती।

यही वह राष्ट्रभक्ति थी, जिसके कारण 500 वर्षों में पहली बार गोरी जाति को जापान के हाथों करारी हार खानी पड़ी। इस घटना ने सारे विश्व को प्रभावित किया और जापान नये एशिया का प्रतीक बन गया।

69. तुम्हीं सच्ची माँ हो

सन् 1897 में पूना में प्लेग का प्रकोप हुआ। उसके निवारण का बहाना बनाकर तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने जनता पर जुल्म ढ़ाए। मि० रेण्ड नामक अंग्रेज अधिकारी इस दुर्व्यवहार में सबसे आगे था। अमर शहीद दामोदर चाफेकर, बालकृष्ण चाफेकर और वासुदेव चाफेकर ने इन अत्याचारों का बदला लेने का निश्चय किया। 22 जून, 1897 ई० को रेण्ड और मि० एजर्स्ट को दिन-दहाड़े गोलियों से उड़ा दिया। परिणाम स्वरूप इन तीनों भाईयों को फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

इस घटना से सबकी आँखें भर आयीं। सिस्टर निवेदिता इन शहीदों की माँ को सांत्वना देने के विचार से पूना पहुँची। उनका अनुमान था कि तीनों पुत्र मारे जाने से माँ आँसू बहाती होगी। परंतु उस वीर माता के धैर्य को देखकर निवेदिता की आंखें सहसा उमड़ आयीं।

माँ ने सादर कहा-'सिस्टर! आप तपस्विनी हैं। आपकी आँखों में ये मोह के आँसू क्यों? मेरे तीनों बेटे देश के लिए बलिदान हुए हैं। काश! मेरी कोई और संतान होती, जिसे में देश को दे सकती।' इतना कहते-कहते उनकी आँखें लाल हो उठीं। मुठ्ठियाँ बंध गयीं। गर्दन ऊँची हो गयी। सिस्टर निवेदिता से न रहा गया। वह झुक पड़ी उस मां के चरणों में और बोली, 'धन्य हो माँ! तुम्हीं सच्ची माँ हो। तुम्हें शत-शत प्रणाम।'

70. वीरमाता की प्रेरणा

महान् क्रान्तिकारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' को फाँसी देने की खबर सुनकर लोग रो पड़े। लोगों को रोते देख बिस्मिल की जननी ने क्रांतिवीरों से कहा-'मैं अपने पुत्र के निधन पर दुखी नहीं हूँ। तुम भी सत्य का मार्ग मत त्यागना, वरन् इसके पीछे मर जाना।'

वीरमाता का अपने पुत्र की शहादत के बाद भी इतना धैर्य देखकर देशभक्तों में नयी जान और नये जोश का संचार हुआ और वे सत्य के मार्ग पर चलते हुए एक-एक करके शहीद हो गये। वीर जननी से साबित कर दिया कि पुरुष की कामयाबी में नारी की अहम भूमिका होती है।

71. भगत सिंह का मातृ-प्रेम

फाँसी से पूर्व भगतसिंह जेल में बन्द थे। जेल में जो सफाई कर्मचारी काम करती थी, भगतसिंह उसे माँ कहते थे। उनका कहना था कि बचपन में मेरी माँ ने मेरी गन्दगी उठायी थी और जवानी में इस माँ ने उठायी है।

जब फाँसी से पूर्व भगत सिंह से उनकी इच्छा पूछी गयी तो उन्होंने मां के हाथ की रोटियाँ खाने की इच्छा जाहिर की। जेलर ने इसे उनका मातृप्रेम समझा। किन्तु जब जेलर को पता चला कि भगतसिंह सफाई कर्मचारी के हाथ से भोजन करना चाहते हैं तो स्तब्ध रह गया।

जेलर ने जब उस महिला को भगतसिंह की इच्छा बताई तो वह भाव विभोर होकर रो पड़ी और बोली, 'बेटा, मेरे हाथ ऐसे नहीं हैं कि उनसे बनी रोटी आप खाएँ।' भगतसिंह ने प्यार से उनके दोनों कंधे थपथपाते हुए कहा, 'माँ, जिन हाथों से बच्चों का मल साफ करती हैं, उन्हीं से तो खाना बनाती हैं। माँ, तुम चिन्ता मत करो और रोटी बनाओ।' भगतसिंह ने बड़े चाव से उसके हाथ से बनी रोटियाँ खायीं।

72. मैं राष्ट्रद्रोही नहीं बनूँगा

एक भारतीय स्वतंत्रता सेनानी क्रांतिकारी जेल में बन्द था। ब्रिटिश अफसरों ने उसे अपनी तरफ मिलाने के लिए लोभ देते हुए कहा-'हम

तुम्हारे सारे अपराध क्षमा कर देंगे। कम्पनी बहादुर से कहकर तुम्हें ऊँचा पद दिलवा देंगें और धन से मालामाल कर देंगें, तुम हमें अपने साथियों के नाम और पते बता दो।'

क्रान्तिवीर हँसते हुए बोला-''मूर्खो! सच्चा क्रांतिकारी कभी वतन से गद्दारी नहीं करता, क्योंकि जो लोग राष्ट्र को हानि पहुँचा कर अपनी उन्नति के लिए प्रयत्न करते हैं, वे मुर्दों में पड़े हुए कीड़ों की तरह उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। मैं फाँसी पर चढ़ना पसंद करूंगा, किन्तु राष्ट्रद्रोही नहीं बनूंगा।''

इस वीरतापूर्ण उत्तर को सुनकर जालिम अधिकारियों ने उसे गोली मार दी और वह क्रांतिवीर भी शहीदों में शामिल हो गया।

73. तू देश सेवा के लिए जा सकता है

सरदार बल्लभभाई पटेल ने अपनी माँ से देश सेवा की आज्ञा माँगी। माँ ने कहा, 'बहुत कठिन काम है बेटा देश सेवा। गद्दी पर बैठना और हुकूमत चलाना नहीं, उसमें झाड़ू- बुहारी से लेकर दुष्टों के संहार तक के कठिन काम करने पड़ते हैं।'

जिस दिन मुझे यह विश्वास हो जायेगा कि तू भी कठिन से कठिन कार्य कर सकता है, उसी दिन आज्ञा दे दूँगी।' सामने दीपक जल रहा था, सरदार पटेल ने उस पर उँगली रख दी, हाथ जल गया। घाव पड़ गया, पर पटेल ने उफ तक न की। उसकी माँ ने हाथ हटाया और उन्हें छाती से लगाते हुए कहा- 'बेटा! तू देश सेवा के लिए सहर्ष जा सकता है।'

74. यह तो पुरस्कार है

मनीला में 'आजाद हिन्द फौज' और अंग्रेजों में भीषण युद्ध हो रहा था। आजाद हिन्द सेना के सेनापति पहाड़ों की तलहटी में बनी सुरंग में बैठे थे, ऊपर गोलाबारी हो रही थी। सहसा एक भारतीय सैनिक, जिसका एक हाथ युद्ध में कट गया था, दौड़ता हुआ उस सुरंग में आया।

जनरल शाहनवाज ने उसके प्रति शोक और सांत्वना प्रकट की तो वह सैनिक गर्व के साथ बोला, 'जनरल साहब, शोक या खेद की कोई बात नहीं है, बल्कि मेरे लिए तो यह शरीर और जीवन भारत माता को अर्पण किया था, उसमें से उसने एक हाथ स्वीकार कर लिया है, यह तो मेरा पुरस्कार है।'

75. प्रत्यक्ष आत्म-बलिदानी

श्याम जी कृष्ण वर्मा को क्रान्तिकारियों का गुरु कहा जाता है। उन्होंने लन्दन में 'इण्डिया हाऊस' बना रखा था। क्रांन्तिकारियों की बैठक यहीं हुआ करती थी।

श्याम जी कृष्ण वर्मा ने कुछ समय तक कैम्ब्रिज में संस्कृत का अध्यापन कार्य भी किया। अनन्तर इस प्रसिद्ध क्रान्तिकारी ने लंदन से 'इंडियन सोशलाजिस्ट' नाम का पत्र छापना आरम्भ किया।
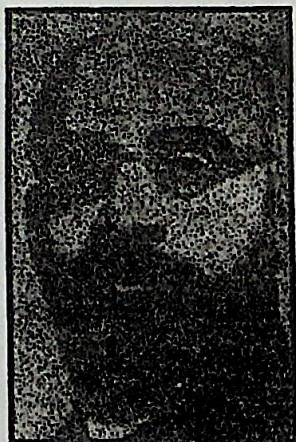
कर्जन वाइली के वध पर श्याम जी ने निडरता से कहा, 'तथापि मैं बिना हिचक यह कहना चाहूँगा कि मैं इसे ठीक मानता हूँ तथा जिस किसी ने यह काम किया है, हिन्दुस्तान की स्वाधीनता के लिए उसकी

बलिदानी भावना की सराहना करता हूँ तथा उसे प्रत्यक्ष आत्म बलिदानी ही मानता हूँ।'

लन्दन टाइम्स में मदनलाल के समर्थन में क्रांन्तिकारियों के ऐसे पत्र छपने पर वहाँ किसी ने आश्चर्य व्यक्त नहीं किया।

76. पागल ही हूँ

राष्ट्रवाद से लाला हरदयाल के दृष्टिकोण का क्या साम्य था, इसे स्पष्ट करने के लिए स्वयं उन्हीं के उद्‌गार प्रकट करना उचित होगा। एक बार काँग्रेस के सर्वोच्च नेता गोपाल कृष्ण गोखले ने कह दिया, "हरदयाल तो देश के लिए पागल हो रहे हैं।" उस पर लाला हरदयाल ने लिखा, 'मैं तो वास्तव में पागल हूँ और कुछ हिन्दुओं को भी अपने साथ पागल बनाना चाहता हूँ। यदि केवल एक करोड़ हिन्दुओं के हृदय और मस्तिष्क में मेरी अपेक्षा आधा पागलपन आ जाए तो हिन्दू राष्ट्र न केवल कल भारत का स्वराज्य ले लेगा। वरन पूर्वी अफ्रीका फिजी, मारीशस आदि देशों पर भी अधिकार कर लेगा।'

लाला हरदयाल 17 भाषाओं के ज्ञाता थे। यूरोप के अनेक देशों में उनके व्याख्यान सुनने की होड़ मची रहती थी, इसके बावजूद कि वे निर्वासित थे।

77. मेरा अपराध क्षमा करना

शहीद भगतसिंह के चाचा थे- क्रान्तिकारी अजीत सिंह। भारत को

आजाद कराने के लिए अजीत सिंह जी को विदेशों में दर-दर की ठोकरें खानी पड़ीं। अंग्रेज हुकूमत उनसे कितना खौफ खाती थी, इस बात का अन्दाजा 5 मई, 1909 के उस तार में लगाया जा सकता है जो भारत के वायसराय को पंजाब के गवर्नर हडसन ने भेजा था, 'पंजाब में बगावत होने वाली है और इस बगावत का नेतृत्व अजीत सिंह और उसके साथी करेंगे।'
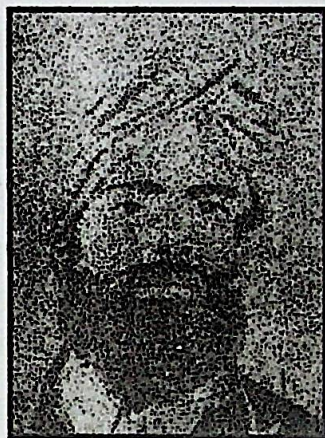
क्रान्तिकारी अजीत सिंह के घर की महिलाओं ने सदैव चिन्ता ग्रस्त जीवन जीया। जब अजीत सिंह भारी कष्ट उठाकर स्वदेश लौटे तो अपनी पत्नी हरनाम कौर के चरण स्पर्श करके भाव विह्वल होकर बोले, 'सरदारनी', मैं तुझे सुख न दे सका इस अपराध को क्षमा कर देना।'

खंडित भारत उन्होंने अपनी आँखों से देखा और संसार से चले गए।

78. अंग्रेजी राज्य के कफ़न में कील

महर्षि दयानन्द के परमभक्त लाला लाजपत राय ने 20 वर्ष की अवस्था में वकालत पास की और अंग्रेज सरकार के विरुद्ध क्रान्ति का बिगुल बजा दिया। लाला जी ने कहा, 'अंग्रेजों से भीख माँगने की जरूरत नहीं, आजादी हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।'

1928 में साइमन कमीशन भारत आया। भारत में इसका विरोध हुआ और काले झण्डे दिखाए गए। लाला लाजपत राय के नेतृत्व में 'साइमन कमीशन गो बैक' के नारे लगे। लाला जी पर निर्ममता से लाठी प्रहार किए गए। उन्हें गहरी चोटें आईं और वे घायल हो कर गिर पड़े। ब्रिटिश सरकार को चेतावनी देते हुए कहा, 'मेरे शरीर पर पड़ने वाली लाठी का एक-एक प्रहार भारत में अंग्रेजी राज्य के कफन में एक-एक कील का काम करेगा।' लाला जी ने इसके 17 दिन बाद शरीर त्याग दिया।

79. देश की दिशा में सोने का कारण

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस जापान में रहते थे। वह प्रतिदिन अपना सिर नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम) दिशा में रखकर सोते थे। उनके कुछ अंतरंग मित्रों ने कहा कि ऐसे सोना अमंगलकारक है। जापान में यह निषिद्ध माना गया है। बोस ने उत्तर दिया- 'मित्रो! आप लोग जानते ही हैं कि मैं अपनी मातृभूमि से दूर हूँ। मुझे यह भी नहीं मालूम कि क्या मैं कभी वहाँ लौट भी सकूँगा, किन्तु एक बात मेरे ध्यान में सदा रहती है कि मेरी मातृभूमि सागर के पार इसी दिशा में है। मैं उसकी गोद में अपना मस्तक रखने को लालायित हूँ। दिन-भर मैं दौड़-धूप करता रहता हूँ, परन्तु जब रात को मैं सोता हूँ तब मातृभूमि के पास पहुँचने का ऐसा दुर्बल, किन्तु प्रमाणिक प्रयास करता हूँ। आप मुझे उसके स्मरण से वंचित मत कीजिए, इससे प्रतिदिन मुझे नई शक्ति प्राप्त होती है।'

80. दोनों कानों के बीच कुछ नहीं

रासबिहारी बोस कलकत्ता हाईकोर्ट में एक अंग्रेज जज के सामने किसी मामले में जोर-शोर से बहस कर रहे थे, बहस समाप्त करते हुए बोस ने कहा, 'आशा है, श्रीमान् ने मेरी बातें ध्यान से सुनी होंगी।'

जज ने उपेक्षा से कहा-'सुनी तो थीं, लेकिन आप की बातें एक कान से आती थीं और दूसरे से निकल जाती थीं।'

इस पर रासबिहारी बोल उठे, 'श्रीमान् सच ही कहते हैं, मालूम होता है, दोनों के बीच में कुछ नहीं है।'

81. आत्म-सम्मान सर्वोपरि

घटना उन दिनों की है जब सुभाष चन्द्रबोस स्कूल में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। उस स्कूल में बंगाली छात्र कम और यूरोपियन अधिक थे, भारत भी उन दिनों गुलामी के पाश में जकड़ा हुआ था। अंग्रेज छात्र प्राय: बंगाली छात्रों को हीन भावना से देखते थे, वे प्राय: यही कहते थे- 'बंगाली छात्र डरपोक तथा बुजदिल होते हैं, हम जब भी चाहें, जहाँ भी चाहें उनको पीट देते हैं।' एक दिन स्कूल के मैदान में बंगाली तथा अंग्रेज छात्र घूम रहे थे इतने में एक अंग्रेज छात्र ने फिर वही वाक्य दोहरा दिया इस पर एक हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर, गोरा-सा बंगाली छात्र आया और बोला-'मैं बंगाली हूँ, कहिए क्या कहते हैं?' इतने में एक अंग्रेज छात्र ने ताव में आकर उसको एक थप्पड़ मार दिया। फिर क्या था? उस बंगाली वीर बालक ने उस अंग्रेज की वह धुनाई की

कि मार-मार कर अधमरा कर दिया। सारे अंग्रेज छात्र घबरा गये और समस्त अध्यापकगण भी यह दृश्य देख व्यग्र हो गये।

यह साहस का पुतला कोई और नहीं बल्कि यह तो 'आजाद हिन्द फौज के निर्माता और 'जयहिन्द' के उद्घोषक, भारत माता के अमर सपूत सुभाष चन्द्र बोस थे, जिन्होंने जीवन से ज्यादा 'आत्म-सम्मान' व देशभक्ति को सर्वोपरि समझा।

82. पारम्परिक पोषाक में शर्म नहीं

सुभाष चन्द्र बोस के पिता सरकारी वकील थे। वह अपने बेटे को बड़ा अफसर बनाना चाहते थे। अतः उन्होंने सुभाष को एक अंग्रेजी स्कूल में दाखिल करवा दिया, परन्तु बालक सुभाष को वहाँ का रंग-ढंग पसंद न आया। वहाँ उन्हें हर बात में विलायतीपन लगा। उन्होंने अपने पिता से कहा कि मैं यहाँ नहीं पढ़ूँगा।

बालक के अनुरोध के आगे पिता को झुकना पड़ा। उन्हें एक सस्ते सरकारी स्कूल में दाखिल करवाया गया। स्कूल के मुख्याध्यापक धोती-कुर्ता पहनते थे। बालक सुभाष को यहाँ का पहनावा बहुत पसंद आया और उन्होंने इसे अपना लिया। सुभाष के पिता को यह सब अच्छा नहीं लगा, लेकिन सुभाष अपनी बात पर अड़े रहे और फिर बोले, 'हम भारतीय हैं, हमें अपनी पारम्परिक पोषाक ही पहननी चाहिए, इसमें शर्म की कोई बात नहीं है।'

83. सिद्धान्त का प्रश्न

सुभाषचन्द्र बोस ने आई.सी.एस की परीक्षा पास करली थी, अब शीघ्र ही ब्रिटिश साम्राज्य के ऊँचे अधिकारी बनाए जाने वाले थे।

उनके माता-पिता अत्यंत प्रसन्न थे और उनकी बहुत बड़ी साध पूरी होने वाली थी, लेकिन सुभाष को ब्रिटिश नौकरी करने की कतई इच्छा नहीं थी। पिता की ओर से एक पारिवारिक मित्र उन्हें समझाने गए। उन्होंने कहा कि ऐसी नौकरी भाग्य से मिलती है, दोबारा ऐसा अवसर नहीं मिलेगा, तुम्हें इसे ठुकराना नहीं चाहिए। सुभाष बोस ने उन्हें समझाते हुए कहा, 'पिता जी सोचते हैं कि हमें अकेले दस वर्षों में होम रूल मिल जाएगा। इस तरह से यह नौकरी ब्रिटिशों की गुलामी नहीं होगी। मैं भी यह समझता हूँ। मुझे तो यह भी लगता है कि सिविल सर्विस में रह कर भी मैं कई उपयोगी और जनहित के कार्य कर सकता हूँ। इसलिए समस्या यह नहीं है। मुख्य प्रश्न सिद्धांत का है। क्या हमें विदेशी नौकरशाही के प्रति आज की स्थितियों में निष्ठावान् होना चाहिए? क्या हमें चाँदी के चंद टुकड़ों और कुछ मान-सम्मान के लिए खुद को बेच देना चाहिए? जिस दिन मैं इस नौकरी के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा दिए गए अनुबंध पर हस्ताक्षर करूँगा, उसी दिन अपनी स्वाधीनता खो बैठूँगा।' अंतत: सुभाष बोस ने उस नौकरी को ठोकर मार दी।

84. अपने खून से हस्ताक्षर

उन दिनों नेताजी सुभाषचन्द्र बोस विदेश में आजाद हिन्द फौज बनाकर देश की स्वतंत्रता के लिए युद्ध में जुटे थे। वह रात को हिन्दी लिखने का अभ्यास करते थे उनके एक सहायक ने पूछ ही लिया-

'नेताजी, सारे संसार में युद्ध हो रहा है, आपके जीवन को हर समय खतरा है। ऐसे में हिन्दी का अभ्यास करने का क्या मतलब हुआ?'

नेताजी बोले, 'हम देश की स्वतंत्रता के लिए युद्ध लड़ रहे हैं।

आजादी के बाद जिस भाषा को मैं राष्ट्र की भाषा बनाना चाहता हूँ, उसमें पढ़ना, लिखना, बोलना बहुत आवश्यक है, इसलिए मैं हिन्दी सीखने की कोशिश कर रहा हूँ।'

रंगून में आजाद हिन्द फौज में भर्ती होने के लिए हजारों युवक-युवतियों की लाइन लगी थी। जुबिली हाल खचाखच भरा था। हजारों लोग अपने प्रिय नेता सुभाष के आने की प्रतीक्षा में थे। उनके आते ही हाल 'नेताजी जिन्दाबाद' तथा 'जय हिन्द' के नारों से गूंजने लगा। कुछ देर बाद नेताजी ने अपना वक्तव्य आरम्भ किया, 'स्वतंत्रता बलिदान चाहती है। अभी प्राणों को न्यौछावर करना बाकी है। हमें ऐसे नवयुवकों की आवश्यता है, जो प्रसन्नतापूर्वक अपने देश की स्वतंत्रता हेतु अपने प्राणों की बलि चढ़ा सकें', तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।'

सभा में बैठे नवयुवक पुकार उठे। हम अपना खून देंगे। नेताजी ने एक प्रतिज्ञा पत्र आगे बढ़ाते हुए कहा, 'इन प्रतिज्ञा पत्र पर साधारण स्याही से नहीं, बल्कि अपने खून से हस्ताक्षर करने हैं। वही आगे आए जिन्हें अपने प्राणों का मोह न हो।

हस्ताक्षर करने के लिए जो भीड़ आगे बढ़ी उनमें सबसे आगे सभी लड़कियाँ थीं, उन्होंने अपनी कमर से छुरियां निकाल कर उंगली पर घाव किये और बहते खूंन से प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर किए।'

85. अपूर्व मनोबल

सन् 1945 की बात है। ब्रिटिश सेना ने आजाद हिन्द फौज से टक्कर लेने के लिए उसे इम्फाल में घेर लिया। एक माह पूर्व वर्षा आरम्भ होने के कारण भोजन व युद्ध सामग्री की पूर्ति ठप्प हो गय़ी। फिर भी भारतीय सैनिकों का मनोबल देखते ही बनता था। जब उन्हें पीछे हटने

को कहा गया तो उनके माथे पर बल पड़ गये, आँखें लाल हो गयीं। उन्हें समझाने के लिए अधिकारी ने कहा-'हमारे पास सवारियां नहीं हैं।'

'हम पैरों से चलेंगे, अपनी पीठ पर खेमे लादेंगे और कंधों पर आजादी संभालेंगे।' 'हमारे पास अस्त्र भी हैं।' 'हमारा खून हमारा अस्त्र है।' 'दवाएँ और अस्पताल भी नहीं हैं', 'घाव हमें प्रेरणा देंगे हमारा दर्द हमारी दवा होगी', 'अन्न का एक दाना भी नहीं,' 'हम पत्ते खाकर जिन्दा रहेंगे, यह नेताजी का आदेश है।'

धन्य थे नेताजी, जिन्होंने अपने सैनिकों में ऐसा अपूर्व मनोबल जुटाया।

86. प्रबल राष्ट्र-भक्ति-भावना

उस दिन नेताजी सुभाष चन्द्र बोस सिंगापुर में थे, वहीं उनकी आजाद हिन्द फौज भी थी। सुभाष बोस को चाँदी के फूलदानों, चाँदी के सिक्कों, चाँदी के बर्तनों, सोना-चाँदी के जेवरों और मूर्तियों से उनके जन्मदिन पर उन्हें तोला जाना था। यह धन-सम्पत्ति भारत को आजाद कराने के कार्यों और आजाद हिन्द फौज पर खर्च होनी थी।

दोपहर में सुभाष बोस आये, वे तराजू के एक बड़े पलड़े पर बैठ गये। सिंगापुर के हिन्दुस्तानी समाज के लोगों ने दूसरे पलड़े में जेवर सिक्के, बर्तन आदि रख दिये। पर वह पलड़ा ऊपर ही उठा रहा। तभी एक बूढ़ी गुजराती महिला आयी, उसने रुपये बचाकर बहुत वर्षों से सोने की पाँच ईंटें खरीद रखी थीं। उसने वे पाँचों ईंटें उस उठे हुए पलड़े पर रख दी। अनेक बहू-बेटियों ने अपने कानों के, गले के, हाथों के, कमर के जेवर उतार कर उस पलड़े पर चढ़ा दिये।

उसी समय एक युवती जल्दी से आयी और उसने सिंदूर लगा सुहाग चिह्न उतार कर पलड़े पर रख दिया। साथ ही आँसू भरी आँखों

से सुभाष बोस को नमस्कार भी किया। उसके पति अंग्रेजों से लड़ते हुए मारे जा चुके थे। तराजू का वह पलड़ा अभी भी थोड़ा ऊपर ही रहा। इसी बीच एक बूढ़ी माँ आई, जिसके हाथ में सोने के फ्रेम में मढ़ा हुआ उसके पुत्र का चित्र था उसके पुत्र को अंग्रेजों ने फाँसी दे दी थी। उस बुढ़िया ने फ्रेम वाला वह चिह्न जमीन पर पटक कर तोड़ दिया। सोने का फ्रेम उसने तराजू पर चढ़ा दिया और चित्र अपने पास रख लिया। अब तराजू के दोनों पलड़े बराबर हो गये थे। सुभाष बोस ने जब उस माँ के पुत्र के शहीद होने की बात सुनी तो उठकर खड़े हो गये और टोपी उतार कर उस माँ का अभिवादन किया। वह बूढ़ी माँ बोली, 'मेरा एक ही पुत्र था, जो फाँसी पर चढ़ा दिया गया। काश! मेरा दूसरा पुत्र भी होता तो आज मैं उसे भी आपको सौंप देती।' सुभाष बोस ने उसके पाँव छूकर कहा–'माता! तुम धन्य हो। तुम्हारे पुत्र का बलिदान व्यर्थ नहीं जायेगा।'

87. देश की आजादी अधिक कीमती है

एक बार नेताजी सुभाष चन्द्र बोस एक जगह भाषण दे रहे थे। उनके गले में ढेर सारी मालाएँ पड़ी थीं। आजाद हिन्द फौज के लिए उन मालाओं की नीलामी की गयी। अचानक एक उत्साही नवयुवक उठा और उसने अपनी सारी जमीन–जायदाद बोली में लगा दी। नेताजी ने उससे कहा– 'मेरे भाई, तुम ऐसा मत करो। अपनी सारी जिन्दगी और घर परिवार का गुजारा कैसे करोगे?' युवक ने कहा– 'साहब, यदि आप अपना पूरा जीवन राष्ट्र को समर्पित कर सकते हैं तो क्या मुझे अपनी जमीन–जायदाद समर्पित करने का अधिकार नही है? देश की आजादी मेरे जीवन और जायदाद से कहीं अधिक कीमती है।'

८८. मुझे दहेज कौन देगा?

बात उन दिनों की है, जब नेताजी सुभाष चन्द्र बोस अविवाहित थे। वे विदेशों में घूम-घूम कर आजाद हिन्द फौज को मजबूत कर रहे थे।

एक दिन सुभाष चन्द्र बोस के पास एक खूबसूरत विदेशी महिला पत्रकार ने बात बनाते हुए पूछा, 'मैने सुना है कि आप तो उम्रभर कुँआरे ही रहेंगे, शादी नहीं करेंगे?'

यह सुनकर नेताजी ने मुस्कराते हुए कहा, 'मैं शादी करूँ या न करूँ, इससे आपको क्या मतलब?' थोड़ी देर रुक कर नेताजी आगे बोले–'दरअसल मैं शादी करने को तो कर लेता, लेकिन समस्या यह है कि काफी दहेज चाहिए और मेरा माँगा हुआ दहेज कोई देने को तैयार नहीं होगा।'

यह सुनकर वह महिला पत्रकार व्यंग्य कसती हुई बोली, 'इसका मतलब है कि यदि आपको भरपूर दहेज मिलेगा तो ही शादी करोगे?' 'हाँ, मेरा तो यह पक्का निर्णय है। पत्रकार बोली–'अच्छा यह तो बताओ ऐसी क्या मांग है, जो कोई पूरी नहीं कर सकता? अपनी बेटी आपके साथ ब्याहने के लिए कोई भी आपको बड़ा से बड़ा दहेज दे सकता है।'

नेताजी बोले, 'मुझे दहेज में अपने वतन की आजादी चाहिए, बोलो कौन देगा?' यह सुनकर महिला पत्रकार थोड़ी देर तक सुभाष चन्द्र बोस का मुँह ताकती रही, फिर वहाँ से चुपचाप चलती बनी।

89. अन्याय का विरोध

'सर। क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ।'

'आओ बल्लभ, क्या बात है?',

'आपके स्कूल में अध्यापक पुस्तकें व स्टेशनरी महँगी कीमतों पर

बेचते हैं। खरीदने को मजबूर करते हैं। वह ठीक नहीं।'

'मैं उनसे बात करूंगा', कहकर मुख्याध्यापक ने उन्हें टाल दिया। पुस्तकों का बेचना और स्कूल से ही खरीदना ज्यों या त्यों बना रहा। बल्लभ को इसमें अपना अपमान लगा। उसने विद्यार्थियों को इकट्ठा किया, उन्हें समझाया। इससे लड़कों में आक्रोश बढ़ा। बल्लभ ने हड़ताल की काल दे दी। हड़ताल हो गई। स्कूल बंद। अध्यापक तथा प्रबंधक बौखला गए। जब कोई रास्ता दिखाई न दिया तो बालक बल्लभ को बुलाकर समझौता कर लिया।

बच्चों को पुस्तकें व स्टेशनरी कहीं से भी खरीदने की इजाजत दे दी गई। स्कूल से खरीदने की पाबंदी खत्म कर दी गई। तब कहीं जाकर हड़ताल को वापस लिया गया और स्कूल में पढ़ाई शुरु हो गई।

बचपन से ही अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने वाले सरदार बल्लभ भाई पटेल स्वतंत्रता के बाद हमारे गृह मंत्री बने। छोटी-छोटी रियासतों को खत्म कर, देश को मजबूत करने का श्रेय उन्हीं को जाता है।

90. रुकावट हटा देना उचित है

बल्लभ भाई के गाँव में अंग्रेजी स्कूल नहीं था। इसलिए अंग्रेजी पढ़ने वाले विद्यार्थी नित्य 9-10 किलोमीटर पैदल चलकर दूसरे गाँव जाते थे। गर्मियों में स्कूल सुबह सात बजे लगता था, इसलिए उन्हें सूर्योदय से पहले ही घर से निकलकर खेतों से होकर जाना पड़ता था। एक खेत की मेंड़ पर लगे एक पत्थर से अक्सर किसी न किसी को ठोकर लग जाती थी।

एक दिन उस सीमा को पार करने के बाद साथियों ने देखा कि उन में से एक कम है। बल्लभ भाई पीछे छूट गये थे। वह खेत की मेड़ पर

किसी चीज पर जोर आजमाईश कर रहे थे। साथियों ने आवाज दी, 'तुम पीछे क्या कर रहे हो?' वह बोले, 'ठहरो, मैं अभी आता हूँ।'

थोड़ी देर में उस गड़े हुए पत्थर को हटाकर वह उनसे आ मिले और सहज भाव से बोले, 'रास्ते के इस पत्थर से अंधेरे में न जाने कितनों के पैरों में चोट आई होगी। आते जाते चोट लगे और रुकावट पड़े, ऐसी चीज को हटा देना ही उचित होता है।'

91. किसान की जुबान

सरदार बल्लभ भाई पटेल अपनी बातें एकदम बेलाग ढंग से कहते थे। वे कभी उन्हें नर्म या अस्पष्ट नहीं रखते थे। इससे अक्सर कोई न कोई मर्माहत हो जाता था। वे जब एक बैठक में भाषण देने गए तो कुछ पटु राजनीतिज्ञों और उनके शुभचिंतकों ने सलाह दी, 'भाई! जरा नरम बोला करो! राजनीति में इतनी कटु भाषा ठीक नहीं।'

सरदार पटेल मुस्कुराए, लेकिन कहा कुछ नहीं। लेकिन जब वे भाषण देने उठे तो उन्होंने कहा, 'मैं किसान का बेटा हूँ। किसान की जुबान में मिठास नहीं होती। मेरी जीभ भी कुल्हाड़े जैसी है। मेरी बात कड़वी लगे तो भी हित की है। मैं साफ बात पसंद करने वाला हूँ, किसानों की ही तरह।'

आश्चर्य है कि आजादी के पचास साल बाद हम सरदार पटेल को तो आदर्श पुरुष मानते हैं, लेकिन किसान नेता की सपाट बयानी हमें रास नहीं आती।

92. कर्तव्य निष्ठा

सरदार बल्लभ भाई पटेल फौजदारी के एक मामले में अदालत में

पैरवी कर रहे थे। मामला संगीन था। अत: उनकी जरा-सी भी असावधानी अभियुक्त को फाँसी दिला सकती थी, इसलिए वह गंभीरतापूर्वक तर्क दे रहे थे।

तभी किसी ने उनके नाम का तार लाकर दिया। उन्होंने तार खोला, पढ़ा और मोड़कर जेब में रख लिया। वे उसी तन्मयता से बहस करते रहे। अदालत का समय समाप्त हुआ और वह उठ गये। साथी वकील ने वल्लभ भाई से तार के बारे में पूछा तो बोले, 'मेरी पत्नी की मृत्यु हो गई है। उसी की सूचना थी। साथी ने कहा, 'इतनी बड़ी घटना घट गई और तुम बहस करते रहे।'

बल्लभ भाई का उत्तर था, 'और क्या करता? वह तो चली गई। क्या अभियुक्त को भी चला जाने देता?'

93. दिल्ली के बाहर नहीं जा पायेंगे

कश्मीर पर संसद् में बहस जारी थी। उसी समय कश्मीर के मुख्यमंत्री शेख अब्दुल्ला धीरे से सदन से खिसक गये। सरदार पटेल का ध्यान जब इस पर आकर्षित किया गया तो बड़े आत्मविश्वास से सरदार बोले, 'भले ही शेख साहब सदन से बाहर चले जाएँ, लेकिन दिल्ली के बाहर नहीं जा पाएंगे।' वही हुआ।

94. आज़ादी के लिए कुर्बानी दो

सरदार पटेल से एक बार एक रियासत का शिष्टमंडल मिला। उसने पटेल से पूछा- 'नवाब से किस प्रकार छुटकारा पाया जाये?'

सरदार पटेल ने उन्हें संगठित रूप से कार्य करने की राय दी। शिष्टमंडल ने नवाब की तोपों से जब भय प्रकट किया, तो सरदार पटेल गर्म होकर बोले; 'तो फिर मेरे पास क्यों आये हो? आजादी

पानी है तो कुछ कुर्बानी दो। जिन तोपों से तुम डरते हो, वे तो मोम की हैं।'

शिष्टमंडल ने 'करेंगे या मरेंगे' का संकल्प लेकर कार्य किया और अंतत: सफलता प्राप्त की।

95. तिरंगा लेकर कहीं भी जा सकते हैं

नागपुर में अंग्रेज न्यायाधीश ने मुख्य सड़क पर तिरंगा लेकर चलने पर पाबंदी लगा दी। इस आज्ञा के विरुद्ध आंदोलन का नेतृत्व सरदार पटेल कर रहे थे। कुछ लोग रोज उस सड़क पर तिरंगा लेकर निकलते और गिरफ्तारी देते। यह क्रम बहुत दिनों तक चला। अंत में तंग आकर सरकार को सरदार पटेल से समझौता करना पड़ा।

इस जीत की खुशी में लोगों ने घर दुकान और बाजार को तिरंगे झंडे से सजाया। जिस सड़क पर तिरंगा झंडा लेकर चलने की मनाही थी, उस सड़क पर एक जुलूस निकाला गया। सरदार पटेल ने कहा- 'देश हमारा, ज़मीन हमारी, झंडा भी हमारा, फिर क्या कारण है कि उसे लेकर हम कहीं न जा सकें।'

96. सच्ची सलाह

लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल को कौन नहीं जानता? देश-प्रेम, त्याग और बलिदान की वह महती विभूति थे। सरदार पटेल का विश्वास था कि बिना कष्टों को सहे और त्याग-तपस्या के अभाव में कोई भी व्यक्ति सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। इनके भाषण भी बड़े शिक्षाप्रद और सारगर्भित होते थे। एक बार बारदौली ग्राम के किसानों के सत्याग्रह के लिए तैयारी करते समय इन्होंने कहा था-'आप लोगों को यह

बात नहीं भूलना चाहिए कि आप किसान हैं। इस बात को आप मत भूल जाना कि वैशाख--जेठ की भयंकर गर्मी के बिना आषाढ़–सावन की वर्षा नहीं होती है। अतः कष्ट से मत घबराओ, उसके बाद सुख का आनन्द मिलेगा।'

97. अपना काम स्वयं करो
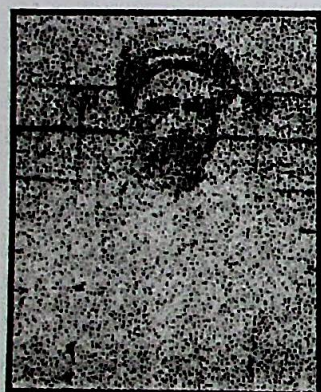
लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक श्री दादा भाई नौराजी के सानिध्य में रहकर वकालत करते थे। उन्हें किसी मुकदमे के सिलसिले में एक बार इंग्लैंड जाना पड़ा, जहाँ वह एक छोटे से उपनगर में ठहरे।

एक दिन सवेरे तिलक की नींद खुली तो उन्होंने देखा, दादा भाई नौरोजी जूतों पर पालिश कर रहे हैं। अपने गुरु को पालिश करते देख उन्होंने जूते छीन लिये और बोले- 'क्या आज नौकर नहीं आया है, जो आप यह काम कर रहे हैं?'

दादाभाई बोले-'हम लंदन के उस भाग में हैं, जहाँ सब नौकर ही रहते हैं। वे सब अपना काम स्वयं ही करते हैं। वैसे भी मैं तो हर रोज अपने जूते स्वयं पालिश करता हूँ। अपना काम स्वयं करने से आदमी स्वावलंबी बनता है।'

गुरु के इस व्यवहार और शिक्षा ने तिलक की जीवन-धारा ही बदल डाली। वे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के नाम से विख्यात हुए।

९८. मोह पर अंकुश

पूना में उन दिनों भयंकर प्लेग फैला था। लोकमान्य तिलक का बड़ा पुत्र प्लेग से पीड़ित हो गया था। पुत्र की दशा चिन्ता जनक होने के बावजूद तिलक 'केसरी' के अंक का अधूरा काम पूरा करने के लिए कार्यालय जाने लगे। किसी ने उन्हें कहा, 'लड़का मौत से जूझ रहा है। अगर आप कार्यालय न जाएँ, तो क्या काम नहीं चलेगा?' गम्भीर एवं संयत स्वर में तिलक ने उत्तर दिया, 'सारा महाराष्ट्र केसरी की प्रतीक्षा में बैठा है, तब कार्यालय न जाने से भला कैसे चलेगा?' मोह पर अंकुश लगाकर कर्त्तव्य पथ पर चल पड़ने के साहस ने ही उन्हें लोकमान्य का गौरव दिलाया।

९९. राष्ट्र-पूजा से बढ़ कर कोई पूजा नहीं

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए लखनऊ आये हुए थे। उनकी अधिवेशन में व्यस्तता बहुत अधिक थी, क्योंकि इसके दौरान मतभेदों को दूर कर अनेक गुटों में विभक्त नेताओं में एकता स्थापित करने के लिए बातचीत होनी थी। किसी प्रकार एकता हो जाए, इसके लिए वे बड़ी दौड़-धूप कर रहे थे। सुबह से लेकर दोपहर तक इतने व्यस्त रहे कि आराम करने के लिए एक क्षण भी न मिला। बड़ी कठिनाई से उन्हें भोजन के लिए अवकाश मिला। भोजन परोसते हुए एक कार्यकर्ता कह उठा, 'महाराज, आज तो आपको बिना पूजन के भोजन करना पड़ रहा है।' यह सुन लोकमान्य तिलक गम्भीर हो उठे और बोले, 'अभी तक हम जो कर रहे थे, क्या वह पूजा नहीं थी? क्या घंटा, शंख बजाना, चन्दन घिसते रहना ही पूजा है? लोक-सेवा से बढ़कर और उत्तम पूजा क्या हो सकती है?' अपने उत्तर से सकते में आए

कार्यकर्ता को लोकमान्य ने फिर प्यार से समझाया, 'देखो, हम भारत माँ की पूजा कर रहे हैं। राष्ट्र की पूजा से बढ़कर भी क्या कोई पूजा हो सकती हैं?'

100. मेरे आँसू सूख चुके हैं

लोकमान्य तिलक जेल में कुछ लिख रहे थे कि इतने में जेलर ने सूचित किया कि उनका तार आया है। तिलक ने तार पढ़ कर उसे जेब में डाला और लिखने में पुनः व्यस्त हो गए। जेलर कुछ देर तक उन्हें देखता रहा, फिर तब उससे रहा न गया तो पूछ बैठा, 'महाशय, क्या आपने तार पढ़ लिया हैं?' 'हूँ' तिलक ने जवाब दिया।

'पत्नी की मौत की खबर पढ़कर क्या आपको दुख नहीं हुआ। आपकी आँखों से एक आँसू तक नहीं निकला', जेलर ने हैरत से पूछा। इस पर लोकमान्य बोले, 'मेरे लिए अब आँसुओं की कोई कीमत नहीं। मैं अपनी भारत माँ की गुलामी पर इतने आँसू बहा चुका हूँ कि अब मेरे आँसू सूख चुके हैं। अब तो ये आँसू उसी दिन निकलेंगे, जिस दिन भारत माँ आजाद होगी।'

स्वतंत्रता के लिए कुर्बान होने वाले ने इसी तरह अपने व्यक्तिगत जीवन को देश पर न्योछावर कर दिया था।

101. गणेश-भक्ति

श्री बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में गणपति शोभायात्रा निकल रही थी। सड़क के किनारे स्थित एक मकान की खिड़की से अचानक एक बच्चे की जोर-जोर से रोने की आवाज़ सुनायी दी। श्री तिलक रुके तथा खिड़की के पास पहुँचे। यह हरिजन (महार) का मकान था। बच्चा

अपनी माँ से छोटी-सी गणपति की मूर्ति को भी गणपति उत्सव की शोभा यात्रा में शामिल अन्य मूर्तियों के साथ ले जाने का आग्रह कर रहा था। माँ उसे समझा रही थी कि बेटा यह नहीं हो सकता, क्योंकि हम अस्पृश्य हैं।

तिलक ने माँ बेटे का यह संवाद सुना, तो उनकी आँखों में आँसू आ गये। उन्होंने अंदर पहुँचकर गणपति-भक्त बच्चे को गोद में उठाया, उसका मुँह चूमा तथा बोले, 'बेटा, तेरी मूर्ति अवश्य जुलूस में शामिल होगी।' देखते-देखते उस महार की बस्ती के सैकड़ों लोग पहली बार गणेश उत्सव में शामिल हो गये। लोकमान्य तिलक ने उस समय अपने भाषण में कहा था कि हमारे धर्म में जाति के आधार पर कोई ऊँचा-नीचा नहीं है। सभी को गणपति की उपासना का समान अधिकार है।
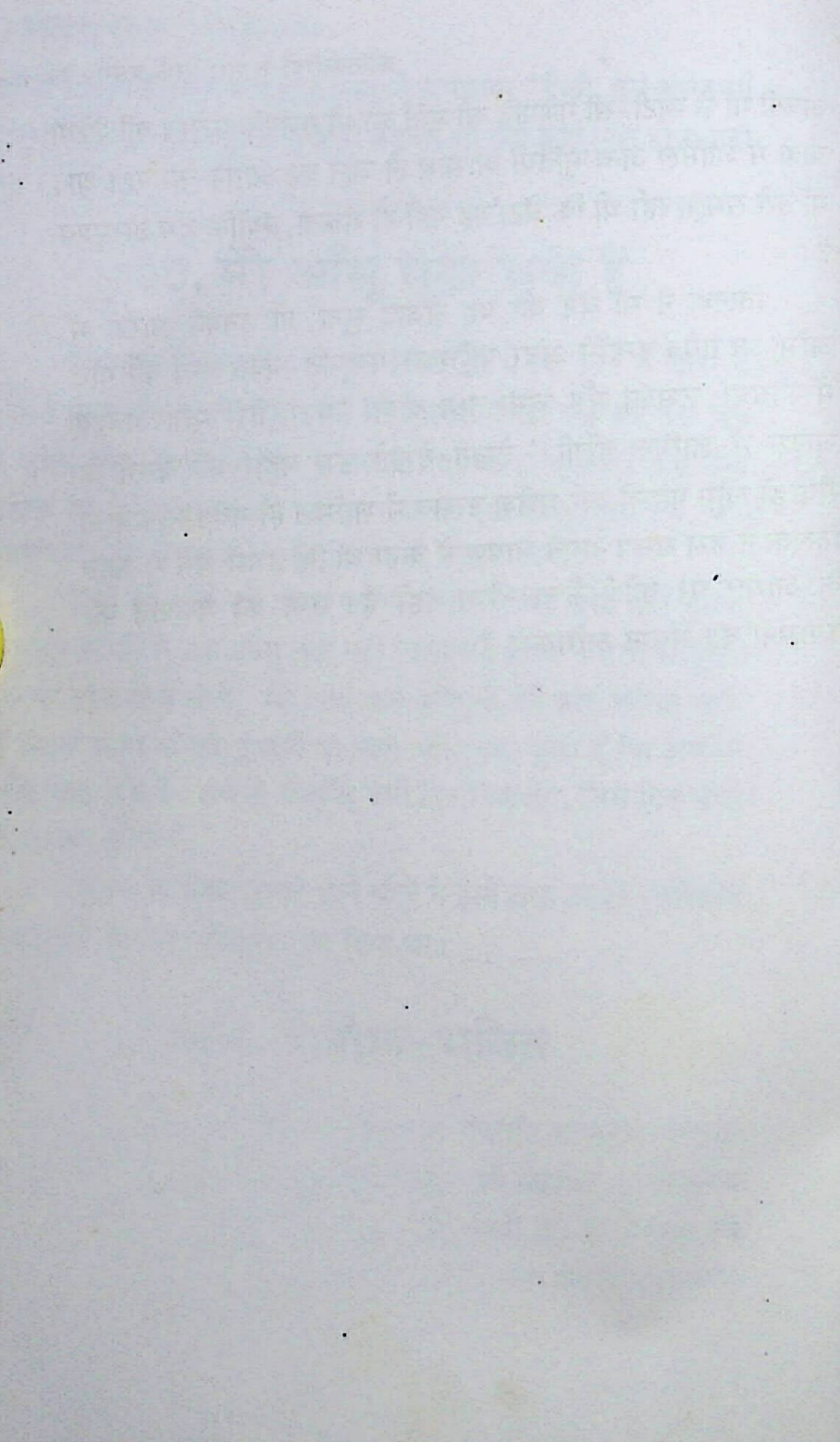
श्री सुखबीर सिंह दलाल
होटल वन्दना,
47, आराकशां रोड,
पहाड़ गंज, राम नगर,
नई दिल्ली - 55

जन्म : हरियाणा राज्य के रोहतक जिले के मातन गांव में 26 सितम्बर, 1946 को जन्म हुआ।

शिक्षा : बी.ए. (दिल्ली विश्वविद्याल), एम.ए. (हिन्दी), मेरठ विश्वविद्यालय, बी.एड. (पंजाब विश्वविद्यालय) तथा पत्रकारिता में डिप्लोमा, भारतीय पत्रकारिता विद्यापीठ (हिन्दी भवन) कनॉट सर्कस, नई दिल्ली।

साहित्य सेवा : बाल्यकाल से ही आर्यसमाज के लिए समर्पित। निरन्तर स्वाध्यायशील व शोध कार्यों में संलग्न। जून 1970 से अगस्त 1973 तक आप मानव-वन्दना हिन्दी मासिक पत्रिका के सम्पादक रहे। आपने कई पत्रिकाओं में सम्पादन सहयोगी के रूप में कार्य किया। भारत की विभिन्न पत्रिकाओं में आपके लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आपके प्रिय विषय-धर्म, संस्कृति, साहित्य और समाज रहे हैं। 5 सितम्बर, 1990 को दिल्ली के उपराज्यपाल ने शिक्षा व समाजिक कार्यों में उल्लेखनीय योगदान के लिए दिल्ली राज्य के राजकीय पुरस्कार से सम्मानित किया।

प्रकाशित पुस्तकें : संस्कृति के ज्योतिर्धर (1968), मानव वन्दना (1970), जाटवीर (1991, 1997, 2004), जिन पर नाज है हिन्द को (1991), सिख वीरांगनाएँ (1994, 2002, 2005) जाट वीरांगनाएँ (1995, 1996, 1998), महापुरुषों के प्रेरक प्रसंग (1999, 2004, 2005), विश्व के धर्म प्रवर्त्तक (1999), संतों के 101 प्रेरक प्रसंग (अगस्त 2004), क्रांतिकारियों के 101 प्रेरक प्रसंग (2006), महापुरूषों के 101 प्रेरक प्रसंग (2006), क्रांतिकारियों की गाथाएँ (2006), रामायण तथा महाभारत कालीन गाथाएँ (2006), ऋषि मुनियों की गाथाएँ (2006), साहित्यकारों की गाथाएँ (2006)।